ॐ **श्री परमात्ने नमः**

साधन मीमांसा

लेखकः

साधुवेष में एक पथिक

प्रकाशकः

श्री स्वामी पथिक अखिल भारतीय दातव्य सेवा समिति

28, विधान सभा मार्ग, लखनऊ–226001

सावधान

लेखक

साधु वेष में एक पथिक

प्रकाशक
श्री स्वामी पथिक
अखिल भारतीय दातव्य सेवा समिति
28, विधान सभा मार्ग, लखनऊ–226001

संशोधित तृतीय संस्करण : फरवरी, 2016

लागत मूल्य रू0 25.00

प्रार्थना

सर्व विघ्न नाशक भगवान।
कृपा करो हे कृपा निधान।।

सर्व विघ्न नाशक भगवान, कृपा करो हे कृपा निधान।।

मेरी क्षुद्र वासना क्षय हो, मेरा चित्त तुम्हीं में लय हो।
मुझ में कुछ न रहे अभिमान, कृपा करो हे कृपा निधान।।

नाथ तुम्हारी शरणागत हम, निभा सकें अपने सत व्रत हम।
हो जाये मेरा कल्यान, कृपा करो हे कृपा निधान।।

कहीं न प्रभु अब दीन रहें हम, स्वतंत्र सत्याधीन रहें हम।
दे दो बुद्धि योग सद्ज्ञान, कृपा करो हे कृपा निधान।।

मेरे नाथ शक्ति दाता तुम, अपनी विनय भक्ति दाता तुम।
तुम पावन मैं पतित महान, कृपा करो हे कृपा निधान।।

किसी भाँति तुमको पा जायें, मिट जायें पथ की बाधायें।
यही 'पथिक' का सविनय गान, कृपा करो हे कृपा निधान।।

सहयोग : सुशीला मिश्रा, प्रयाग

संशोधित संस्करण : अप्रैल 2016

लागत मूल्य : रू0 20.00

मुद्रकः

क्रियेटिव प्वाइंट एफ–25, जयहिन्द काम्प्लेक्स

बी0एन0 रोड, कैसरबाग, लखनऊ फोनः 0522–3012827

श्री परमात्मने नमः

साधन मीमांसा

बुद्धिमान मनुष्यों! आप सहस्त्रों लाखों प्राणियों की भाँति सुख से तृप्त होना तो चाहते ही होंगे और इसके लिये ही आपने न जाने किन–किन वस्तुओं तथा व्यक्तियों का आश्रय ले रक्खा होगा। सम्भव है कि आप आगणित इच्छाओं की पूर्ति में सुख का अनुभव कर चुके होंगे और आज भी कर रहे होंगे परन्तु यह तो निश्चित है कि आप पूर्ण तृप्त न हो सके होंगे। साथ ही सुख से तृप्त होने के लिये अनेकों वस्तुओं तथा व्यक्तियों के पीछे दौड़ते हुए अपनी शक्ति के ह्रास का अनुभव होने लगा होगा। यदि बुद्धि में कुछ दूरदर्शिता होगी तो अन्त में विनाश की झाँकी भी दीखने लगी होगी। आपने यह भी अनुभव किया होगा कि सुख के पथ में दुःख कोई नहीं चाहता, आप भी न चाहते होंगे परन्तु संसार में ऐसा कौन सुखी निकलेगा जिसे अनिच्छित दुःख का अनुभव न करना पड़ा हो? यह हो सकता है कि कुछ देर के लिए जब मनुष्य के सन्मुख गोद में सुख होता है तब उसी की पीठ पर चढ़ा हुआ दुःख नहीं दिखाई देता है जो कि किसी समय भी वह दुःख उस सुखी की गोद में कूद पड़ता है और सुखी को अचानक दुःख के दर्शन से व्यथित होना पड़ता है। आपको यदि सुख के पीछे छिपे हुए दुःख के दर्शन न हो रहे हों तो सुख के अगल बगल से झांक कर देख सकते हैं। भले ही किसी की समझ में न आये परन्तु संसार के सभी मनुष्य सत्य से विमुख होते ही दुःख का

अनुभव करने लगते हैं और उस दुःख को जिस किसी संयोग से दबा पाते हैं उसे ही सुखद मानते हैं। दुःख को दबाते रहना ही सुख है। सत्य विमुख प्राणी जब तक सत्य के सन्मुख न होगा तब तक संसार की वस्तुओं तथा व्यक्तियों के द्वारा अपने दुःख को दबाता रहेगा और दबा हुआ दुःख पुनः पुनः उभरता रहेगा। वास्तव में दुःख को दबाने का प्रयत्न न करके उसे मिटाने का उपाय करना चाहिये और दुःख को मिटाने का उपाय एक ही है, वह है– सत्य के सन्मुख होना। यह दुःख इतना हितकारी है कि मनुष्य से सत्य की खोज करवा ही लेता है। सत्य विमुख दुःखी मानव को सत्य के सन्मुख होने के लिये संसार में अनेकों ही साधन देखे सुने जाते हैं उनमें से संत महापुरुषों ने साधन चतुष्टय को विशेष स्थान दिया है। यदि आप दुःखी हैं और दुःख से मुक्त होना चाहते हैं तो सन्त सद्गुरु के बताये हुए इन साधनों को अच्छी तरह समझ लीजिए। वे चार साधन हैं– ''विचार, वैराग्य, षट सम्पत्ति और मुमुक्षता।''

विवेक

सर्व प्रथम हमें विवेक रूपी साधन को स्पष्ट समझना है। सत्य के सन्मुख होने के लिए, दुःखों को मिटाने के लिये अथवा भगवद्भक्ति तथा मुक्ति के लिए साधक में विवेक सर्वोपरि आवश्यक है। विवेक के द्वारा ही बुद्धिमान मनुष्य अपनी भाग्यवश आने वाली परिस्थितियों का सदुपयोग करते हुये बन्धन दुःखों से छूट सकता है।

जिसके द्वारा सत्–असत् का स्पष्ट निर्णय होता है उसे ही विवेक कहते हैं अथवा दूरातिदूर तक देखने की शक्ति को, जिसमें कर्म का परिणाम, कर्म करते समय ही दीख जाता है; जिससे सुख का और दुःख का अन्त दीखता है; जिसके द्वारा प्रत्येक वस्तु की वास्तविकता प्रतीत होती है– विवेक कहते हैं। पूर्व कर्म–फल के भोग की अनुभूतियों को स्मरण रखते हुए कर्त्तव्य कर्मों को विधिवत पूर्ण करना विवेक; अथवा दुःखद दोषों का त्याग करते हुए व्यवहार में सद्गुणों, सद्भावों का ही पक्ष लेना विवेक है।

जिस पुरुष में सद्विवेक जाग्रत रहता है उसमें आशा तृष्णा नहीं रह जाती है। अहंकार अभिमान से रहित होता है; उसमें दम्भ नहीं पाया जाता; उसे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि के कारण शरीर और संसार में दूर से ही दोष एवं दुःख दिखाई देते हैं; इसलिये उसमें भोगों से वैराग्य दृढ़ रहता है; वह अहिंसा, क्षमा, दया एवं सहिष्णुता को अपनी प्रकृति में धारण कर हिंसा, क्रोध, कठोरता आदि दोषों के आने का मार्ग ही बन्द कर देता है। उसके प्रेम में कामना नहीं रहती।

विवेकी व्यक्ति ही वर्तमान परिस्थिति का सदुपयोग करता है। अपने समीप आए सुख को बांटता है और दुःख में त्याग करता है। प्रायः सबसे असंग रहने की योग्यता विवेकी में ही होती है।

वास्तव में पाप, शोक रोग और विपत्ति विश्व की वस्तुओं में नहीं है फिर भी मनुष्य दुःख, व्याधि विपत्ति बन्धन में इसलिए पड़ता है

क्योंकि वस्तुओं के पारस्परिक सम्बन्ध का विवेक नहीं होता। विवेक बल द्वारा साधक जब नियमानुकूल सम्बन्धित शक्तियों संचालन करता है तब वे शक्तियाँ उचित संरक्षक होती हैं और जब नियम का उल्लंघन होता है तब वही शक्तियाँ सद्गति में बाधक होकर विनाशकारी बन जाती हैं।

विवेकपूर्वक जितना अधिक तुम अपने क्षुद्र अहं की स्वार्थपरता में संयम करोगे, उतनी ही तुममें महानता दर्शित होगी। और जितनी ही मात्रा में अपने छुद्र अहं की पाशविक वृत्तियों के अधीन रहोगे उतनी ही मात्रा में तुम दुःखी, दरिद्र बन कर अपनी मूर्खता अज्ञानता के कारण अधः पतित होते जाओगे। दुःखो, तुम्हारा मन ही, तुम्हें सुपथगामी और कुपथगामी बना देता है। यदि विवेक दृष्टि से तुम अपने अन्तःकरण को देखते रहकर इस पर नियन्त्रण रक्खोगे तो तुम्हारा परमोत्थान निश्चित है। यह मन ही तुम्हारे बन्धन, मुक्ति का कारण है अब चाहे तुम बद्ध बने रहो चाहे मुक्ति के लिये प्रयत्न करो।

देखो, ये इन्द्रियाँ स्वभावतः विषयानुगामिनी हैं– इनके ही कुसंग में तद्रूप होकर मन सद्पथ से भ्रष्ट होता है, और बुद्धि विषयी मन की अनुगामिनी बनकर विवेक दृष्टि–हीन हो जाती है। यही तुम्हारा घोर पतन है।

अब मन को विषय, कुसंग से मुक्त करके बुद्धि से सद्विवेक जाग्रत कर अहं को आत्मा में लय करो और आत्मा को परमात्मा में

तन्मय बना दो, यही है बन्धन से मुक्ति और परमानन्द की प्राप्ति। विवेक दृष्टि से काम न लेने के कारण ही मूर्खतावश दासता की बेड़ियों में बंधा रहता है। तुम विवेकवान–शान्त अपने को तभी समझना जब कि तुम्हारा क्षुद्र अहं किसी भी वस्तु का अभिमानी न रह जाय। तुम्हारा क्षुद्र अहं ही तुम्हारा शत्रु है अज्ञानता ही अंधकार है। सुख–कामनाओं वासनाओं के वशीभूत रहना ही कारावास है। नाना प्रकार के दुःख ही दण्ड है।

तुम विवेक दृष्टि द्वारा अपनी अस्त–व्यस्त दशा को सम्हालों फिर अपनी निम्न–इच्छाओं आशाओं एवं परिस्थितियों से घिरे हुये नहीं रहोगे तभी तुम अपने क्षुद्र अहं की सेवा का परित्याग कर सत्य की उपासना में तत्पर हो सकोगे। विवेक के बल पर चिन्ता, भय, शोक, विलाप, निराशा, पश्चाताप, अधमता, ग्लानि, कायरता इन सबको कहीं अपने अन्दर न घुसने दो क्योंकि यह सब वहीं रहते हैं जहाँ अंधकार है, अज्ञान है, मूर्खता है।

विचार करके देखो? तुम्हारे अन्तःकरण में परिस्थितियों का रंग चढ़ा हुआ है। विचार तथा भाव परिस्थितियों के अनुसार ही बन रहे हैं ऐसी दशा में विवेक द्वारा ही परिस्थिति के बन्धन से मुक्त हो सकोगे। जहाँ तुम्हारा मन विषयों की रसानुभूति के बोझ से दब कर स्मृतियों का भण्डार बन गया है वहाँ विवेक द्वारा ही तुम अपने मन को इस अनावश्यक दुःखद बोझ से मुक्त कर सकते हो।

यदि तुम अपनी आवश्यकताओं से इतना दबे हो कि परमार्थ लाभ के पथ में कदम नहीं बढ़ा पाते तो अपने तमाम कष्टों को दूर करने के लिए इस समय तुम्हारे सामने आवश्यक कर्त्तव्य यही है कि अपनी आवश्यकताओं को ठीक–ठीक समझ लो। परन्तु अपनी शुद्ध–बुद्धि के विकास होने पर ही तुम समझ सकोगे कि 'मेरी वास्तविक आवश्यकतायें क्या हैं,' यह जान लेने पर तुम्हें संग्रह की चिन्ता न रह जायेगी।

जब तुम चमत्कारों असाधारण कौतुकों तथा सिद्धियों के पीछे उत्सुक होकर दौड़ते फिरते हो तब तक निश्चय ही सत्य के उस सौन्दर्य का दर्शन नहीं हुआ है जो विवेक दृष्टि देख मिलता है। विवेकी का किसी प्राप्ति की इच्छा ही बन्धनकारी प्रतीत होती है। अविवेक के कारण ही तो मनुष्य संसार में महत्व चाहता है और यह महत्व की लालसा ही लोगों को आकर्षक मायिक जाल में फंसाये रहती है।

जिन परिस्थितियों के दृश्य–बन्धनों से तुम जकड़े हुये हो उन पर दाँत पीसने से या खीझने से काम न चलेगा, विवेक दृष्टि द्वारा देखो कि क्यों बंधे हो, कैसे बंधे हो? यह समझते ही उनसे मुक्ति का मार्ग भी स्पष्ट दीख पड़ेगा। ध्यान रहे तुम्हारा कोई भी दुःख तुम्हारी ही अज्ञानता का परिणाम है। तुम्हें उसी से उच्च ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

जहाँ तक तुम्हारा अधिकार है तुम अपने जीवन को अपने स्वकलिपत संसार को बनाते या बिगाड़ते रहते हो, उसी प्रकार का जैसे कि तुम हो। जहाँ पर देहात्म बुद्धि वाले मनुष्य मृत्यु के पथ में चलते हुये सदा भयभीत रहते हैं वहीं पर तुम अपनी विवेक दृष्टि के द्वारा अपने सत्य शास्वत् स्वरूप का अनुभव कर अनन्त जीवन के भोक्ता होकर परमानन्द को प्राप्त कर सकते हो।

विवेक द्वारा ही तुम जान सकते हो कि अवनति और उन्नति के कारण तुम्हारे ही भीतर हैं, पापी पवित्रता को कैसे देख सकेगा क्योंकि उसमें विवेक दृष्टि नहीं खुली, पर वह पुण्यात्मा, जिसमें यह दृष्टि खुलती है, भली प्रकार पाप को देखता रहता है।

तुम विवेक—दृष्टि से देखो? तुम्हारी वैभव—सामग्री, ऐश्वर्य, शक्ति, तुम्हारा गौरव तुम्हारे भीतर ही निहित है, फिर भी जहाँ कहीं तुम इस संसार के सामने दरिद्र होकर हाथ पसारते हो वहाँ अविवेक के वशीभूत हो। तुम यहाँ पर विश्राम तथा स्थिर सुख से तृप्ति की आशा न कर शान्ति के लिये प्रयत्न करो। तुममें जितना ही विवेक बल बढ़ेगा उतना ही तुम नम्र विनयी होते जाओगे। तुममें असार महिमा की भूख ही न रह जायेगी जिसके लिये तुम अभी तक इधर उधर हाथ पसारते थे। विवेकहीन मनुष्य अधिकांश में विनाश पथ पर ही दिखाई देते हैं पर सत्य जीवन की ओर ध्यान नहीं देते। दुःख की कृपा से कभी न कभी तो हर एक को वहीं वापस आना ही पड़ेगा।

तुम्हारे लिए यह सौभाग्य की बात है, यदि अपना जीवन व्यर्थ न खोकर शीघ्र से शीघ्र सत्य के अनुरागी बन सको।

तुम इसे न भूलो कि पाप और दुःखों के मध्य से भी पुण्य, आनन्द का द्वार खुला रहता है। दोषों के बीच में ही सद्‌गुणों का विकास स्थल है। यदि विवेक दृष्टि खुल जाय तो अनित्य के हृदय स्थल में ही नित्य सत्य परमात्मा व्याप्त दिखाई देगा।

तुम आरम्भ ही से सत्य लक्ष्य पर प्रेममयी गहरी दृष्टि रक्खो। सत्य को किसी के बदले में न छोड़ो कहीं भी असावधानी दुर्बलता न आने दो। तुम आरम्भ के किसी छोटे–छोटे कार्यों को भी न भूलो क्योंकि इनसे अपने भीतर कमजोरी, आलस्य को ही पुष्ट करोगे। यदि तुम अपने छोटे–छोटे दोषों को, साधारण भूलों को भी बहुत बड़ी हानि समझोगे तो अवश्य ही कभी महान बन जाओगे। तुम जितना ही अपनी विवेक–दृष्टि से अपने पथ में चरित्र–संशोधन, सन्मार्ग, निरीक्षण करोगे उतना ही यह दृष्टि दूरदर्शी होकर दिव्यता धारण करेगी।

यदि प्रारब्ध–कर्मानुसार कठिनाइयों के संकट से अपने को घिरा पाओ तो घबराओ नहीं। घबराहट, चिड़चिड़ापन एक बहुत बड़ी दुर्बलता का द्योतक है। तुम हर एक कठिनाई को विवेक–दृष्टि द्वारा तुम कर्म–कौशल तथा शक्ति के सदुपयोग से जीत सकते हो। निराशा, घबराहट, निरर्थक ही नहीं वरन् मूर्खता भी है।

यह सत्य है कि तुम जब अपने अन्तर्क्षेत्रगत किसी भी स्वार्थ संस्कार को काटोगे तो पीड़ा होगी ही पर उस पीड़ा के पश्चात् स्थाई सुख की उपलब्धि भी होगीं जब तुम किसी भी दोष के सामने अधीर हो जाते हो तब तुम उसे और भी पुष्ट करते हो। अधीरता की जगह धैर्य धारण करो। तुम्हारे साथ कितने ही प्रकार के उद्वेग ही पीड़ाएं हैं, अज्ञानता ही अंधकार है, स्वार्थ ही सत्य प्रकाश को रोकने वाली दीवार है, प्रलोभन ही फिसलने की भूमि है पीछे खींचने वाली आसक्ति ममता–मोहादि ही बन्धन की डोरियां हैं। इन सब कठिनाइयों को विवेक, वैराग्य, त्याग के बल पर पार कर सकोगे।

विवेक दृष्टि से तुम अब इस जगत को देखो और जगत के कारण को देखो, आत्मा और अनात्मा का बोध प्राप्त करो। जड़ चेतन को देखो माया और ब्रह्म की अनिवर्चनीय अनन्ता को देखो और बन्धन, मुक्ति को भी स्पष्ट देखो। इस प्रकार का सर्व ज्ञान प्राप्त करने के लिये तुम किसी भी प्रकार के अभिमान आचरण को उतार फेंको। यहाँ तो दीनता, नमनशीलता की निर्दोष पवित्र चादर ओढ़ कर चलो।

इस पवित्र क्षेत्र में वही पैर बढ़ाने के अधिकारी हैं, जिन्होंने अपने आपको देह, इन्द्रियों की सुख–भोगासक्ति से अलग कर लिया है, जिनका अन्तःकरण सद्व्यवहारों से शुद्ध होकर सद्गुणों से धनी बन गया है। पवित्र उत्तम जीवन ही इस दिव्य प्रकाश को पाता है। अपने

अहंगत, वहिर्मुख वृत्तियों के निरोध से आध्यात्मिक बल और सुख–शान्ति की प्राप्ति होती है।

जब तक तुम सद्विवेकी नहीं होते तब तक वासनाओं के बन्धन से मुक्त होना अति कठिन है। तब तक तुम रूप, नाम जाति संस्कार के ही एक पुंज बन रहे हो, और तुम्हारा समस्त व्यक्तित्व इन्हीं सब दृश्यों का परिणाम है। ध्यान देकर अब तुम यह भी देखो कि जन्म जन्मान्तरों से तुम्हारे चित्त पर विविध दृश्यों ने, मानव समाज ने, या नाना प्रकार के सीमित धर्मों ने कैसे–कैसे संस्कार डाल रक्खे हैं, जिनके रंग में रंगी दृष्टि से आज भी तुम प्रत्येक वस्तु को देखने के अभ्यस्त हो रहे हो पर स्मरण रहे यथार्थ बोध तभी होगा जब तुम्हारा चित्त इन दृश्यों संस्कारों से रहित होगा। जब तुम्हारी बुद्धि हर एक पक्ष से रहित होगी तभी तुम सत्य ज्ञान के निर्मल प्रकाश को देख सकोगे उसी में तुम्हें निष्कलंक बोध होगा। अनुभव, बोध, ज्ञान की परमोच्च सीमा पर पहुँच जाना ही सच्ची उन्नति है। और असार जगत की आसक्ति एवं दृश्य–बन्धन से अपने मन और बुद्धि को मुक्त कर लेना ही तो सुन्दर विकास है।

विवेक द्वारा दृश्य के यथार्थ रूप को जानकर अपने व्यक्तित्व की चैतन्यता एवं अहं भाव से ऊपर उठने पर ही मानव सत्य का बोध प्राप्त करता हे तभी यह स्पष्ट अनुभव होता है कि एक ही परम सत्ता अनादि और परमाधार है। वही समस्त विश्वमय होकर अविकार रूप में अविनाशी, सर्वातीत है यद्यपि वह अचिन्त्य है फिर भी उसे कोई

अचिन्त्य होकर पा सकता है उसका दर्शन नहीं, बोध होता है पर बोध प्राप्ति के लिये बुद्धि अत्यन्त निर्मल होनी चाहियें

किसी भी वस्तु में अपने सुख को सीमित न करना; किसी भी वस्तु का मोह अपने में न रखना, निर्विकार सत् स्वरूप में ही बुद्धि को स्थिर कर लेना यही आध्यात्मिक योग है। विवेक दृष्टि से देखो पांच भौतिक देह तुम्हारा रूप नहीं है तुम चैतन्यमय ज्ञानस्वरूप हो। तुम्हारे जीवन का सम्बन्ध अविनाशी सत्ता से है यह अनित्य जीवन नित्य जीवन की प्राप्ति का साधन होना चाहियें यदि तुम्हें मृत्यु से डर लगता है तो समझ लो कि संगठित द्रव्यों के बिखरने अथवा रूप परिवर्तन के अतिरिक्त मृत्यु कुछ नहीं है। मृत्यु के भय से मानव तभी तक त्रस्त रहता है जब तक अपने सत्स्वरूप आत्मा को नहीं जानता। देह को अपना अभिन्न रूप मानकर ही तुम देहासक्ति से बद्ध हो रहे हो। इस बन्धन से तभी छुटकारा होगा जब सत्स्वरूप आत्मा को जान लोगे।

आत्मा–परमात्मा के अभेदानुभव में ही शान्ति है, सन्तोष है, परम तृप्ति है वहाँ केवल प्रेम है और आनन्द ही आनन्द है। विवेक प्रकाश में सतत् चिन्तन करते रहो कि मैं आत्मा हूँ–देह नहीं, मैं अविनाशी हूँ–विनाशी नहीं, मुक्त हूँ–बद्ध नहीं, इस अनुभव की दृढ़ता के लिये मन को स्ववश में रक्खों और इसके लिये या तो मन की गति को सर्वोपरि श्रेष्ठ आदर्श की ओर बदल दो या फिर मन की गति को ही

रोक दो। ऐसा तभी हो सकेगा जब तुम अपनी समस्त क्षुद्र इन्द्रियों को प्रायः मौन रख सकोगे।

विवेक न होने पर मनुष्य उत्तम कुल से, सुन्दर रूप से, विपुल सम्पत्ति से, अच्छी विद्या से, अच्छे बल से, उच्च पदाधिकार से लाभ न उठाकर अभिमानी एवं दोषी बनता है, अनेकों पाप अपराध करता है। विवेक न होने पर सभी प्रकार की शक्ति, सम्पत्ति, बल वैभव का सदुपयोग करते हुये मानव अपने में दैवी–गुणों का अधिकाधिक विकास करते हुए सत्यानन्द तक पहुँच जाता है।

जिनकी बुद्धि में विवेक नहीं है वही अदूरदर्शी हैं वही असार सुखों के उपासक हैं वही वस्तु तथा व्यक्ति की दासता में बद्ध हैं। विवेक न होने पर ही पुत्र पिता में, भाई बहिन में, पति पत्नी में कहीं अत्यन्त आसक्ति और कहीं लड़ाई झगड़ा कलह दिखाई देते हैं। विवेक बिना मानव सुख तथा दुःख के बन्धन से नहीं छूट सकता।

यह विवेक प्राप्त होता है विरक्त ज्ञानी पुरुषों के सुसंग से, या शास्त्रों में लिखे हुए उनके विचारों के मनन से, तदनुसार स्वाध्याय अर्थात् अपने आपके अध्ययन से, अथवा सूक्ष्म सात्विक बुद्धि के अन्तर्मुखी होने से भी ऐसा विवेक प्राप्त होता है।

संसार में जितने दुःख हैं वे अविवेक के कारण ही हैं। प्रयत्न से दुःख दब जाते हैं किन्तु मिटते नहीं। तुम्हें दुःखों को दबाना है तो प्रयत्न करो और सत्य के सन्मुख हो जाओ।

जिस सुख के अन्त में दुःख मिलता है और जिस दुःख के अन्त में शान्ति मिलती है उस सुख, दुःख तथा शान्ति को दूर से ही देखना विवेकी का काम है। विवेकी मानव परिणामदर्शी होता है।

बुद्धिमान सज्जनों! विवेक न होने के कारण ही तुम नहीं जानते कि तुम्हारे अनेकों दुःखों का कारण तुम्हारा ही कोई न कोई दोष है, तुम्हारी ही कहीं भूल है। विवेकी बनकर तुम अपने जीवन से दोषों को हटाओ।

विवेक जाग्रत होने पर भी कदाचित् तुम्हारे जीवन में हानियाँ होंगी, वियोग के अवसर आयेंगे, अनादर भी होंगे, अभाव भी सामने दिखाई देंगे परन्तु तब तुम किसी दूसरे को अपने दुःख का कारण न ठहराओगे। अविवेकवश दूसरों को अपने दुःख का कारण ठहराने से ही ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, निन्दा आदि अपराध बनते रहते हैं परन्तु तुम विवेक के बल पर इन सभी दोषों से बचते हुए दोषों की पुष्टि के विरुद्ध कहीं धैर्य, कहीं क्षमा, कहीं सहिष्णुता आदि सद्गुणों को पुष्ट करोगे।

तुम विवेक के द्वारा ही उन असार सुखों के पीछे दौड़ना छोड़ सकोगे जिन सुखों के कारण ही तुम्हें अनेकों दुःख देखने पड़ते हैं। और आसक्ति के कारण ही वियोग का दुःख भोगते हो, जब तुम धन को महत्व देते हो, धन कमाने का अपने को यन्त्र बना देते हो, धन न मिलने से दीन बनते हो और धन मिलने पर अभिमान से उन्मत्तवत्

व्यवहार करते हो, धन हानि होने पर गरीबी का दुःख भोगते हो। जब तुम बड़ाई, प्रतिष्ठा के लिये तरसते हो, झूठ, कपट, छल करके अपने दोषों को छिपाने का प्रयत्न करते हो, मान देने वालों के प्रति रागी और न देने वालों के प्रति द्वेषी बनते हो तब वहाँ तुम अविवेकी ही हो। एक वाक्य में समझना चाहो तो जहाँ तक तुम कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, ईर्ष्यालु, द्वेषी, आसक्त तथा बद्ध हो वहीं तक अविवेकी हो। विवेकी होने पर ही तुम इन दोषों से मुक्त हो सकोगे। विवेक होने पर ही तुम्हें सत्–असत् का, धर्म–अधर्म का, पाप–पुण्य का तथा सुख–दुःख के कारण का ज्ञान होगा। विवेक होने पर सत्य के प्रति अनुराग बढ़ेगा और असत् के प्रति विराग बढ़ेगा इसलिये विवेक के आगे सत्स्वरूप आत्मा में स्थित होने का दूसरा साधन वैराग्य है।

वैराग्य

किसी भी वस्तु तथा व्यक्ति के प्रति अपनत्व के भाव से मन का आकर्षित होना ही राग है। जिसे हमने नहीं बनाया और जिन्हें हम अपने साथ सदा नहीं रख सकते उन सम्बन्धियों तथा सुखद वस्तुओं के होते हुये उनको अपना न मानना, उनमें आसक्त न रहना मन से उनका मनन न करना ही विराग है। राग ही समस्त बन्धनों का कारण है त्याग से मुक्ति मिलती है। सांसारिक वस्तु तथा व्यक्ति के प्रति राग से ही रुकावट होती है त्याग से ही सद्गति होती है। वैराग्य होने पर ही शान्तिदाई त्याग साधक में दिखाई देता है।

रागवश अनेकों अनर्थ बनते हैं, अनेकों दोष बनते हैं किसी के प्रति राग की अधिकता ही किसी के विरोध का कारण बनती है। सासंरिक वस्तु व व्यक्ति का जो रागी है वह अदूरदर्शी होता है असद्वर्ती होता है। सांसारिक राग पापों, अनर्थों का मूल है।

रागी व्यक्ति की अपनी मानी हुई सीमा होती है उसी का पक्षपाती होता है उसे राग की सीमा के बाहर जो कुछ सत्य है वह नहीं दिखाई देता। रागी व्यक्ति की बुद्धि अपनी मानी हुई वस्तुओं में, माने हुए सम्बन्धियों में, अपने माने हुए धन में– पदाधिकारी में खूँटे से बंधे हुये पशु के समान चेष्टा करती है।

रागी व्यक्ति अपने प्रति सत्यान्वेषक न्यायी नहीं हो सकता। यदि तुम कहीं रागासक्त हो तो उतने अंशों में बद्ध हो तुम्हारी शक्ति फँसी हुई है। राग रहने तक तुम सत्य की ओर शाश्वत शान्ति की ओर बढ़ नहीं सकते इसीलिये तुम्हें विवेक पूर्वक वैराग्य धारण करना है। जिस प्रकार विवेक होने पर अहंकार असत् वस्तुओं तथा सुखों के अभिमान से शून्य होकर शुद्ध होता है उसी प्रकार वैराग्य से बुद्धि मोह मुक्त होकर शुद्ध समस्थिर होती है क्योंकि अविवेकवश ही अहं अशुद्ध है और रागवश ही बुद्धि अशुद्ध है।

विवेक से संगाभिमान दूर होता है और वैराग्य से सम्बन्धासक्ति दूर होती है। जिन जिन वस्तुओं में मनुष्य को सुख मिलता है उन्हीं वस्तुओं के प्रति मोह, ममता, आसक्ति दृढ़ हो जाती है। साधक को

विवेक द्वारा प्रत्येक वस्तु की असारता पर उसके नश्वर जीवन को देखते रहना होता है तभी वैराग्य होता है। रागासक्ति वश वस्तुओं का संग्रह करना विश्व का ऋणी होना है और संग्रहित वस्तुओं को दूसरे की सेवा में लगा देना ही उऋण होना है। संसार में उऋण होने पर ही भगवद् सम्बन्ध होता है। सच्चा विरागी ही उऋण हो सकता है क्योंकि उसमें त्याग की शक्ति होती है।

देह से लेकर ब्रह्म लोक पर्यन्त समस्त सुखद किन्तु अनित्य पदार्थों के प्रति जो घृणा बुद्धि है उसे ज्ञानी पुरुष वैराग्य कहते हैं। विराग होने पर साधक अपमान से, हानि से, प्रियजनों के सम्बन्ध विच्छेद से या अपने शरीर की मृत्यु से न भयातुर होता है न दुःखी होता है।

संसार से पूर्ण विराग हुए बिना, साधक में न तो पूर्णतया भक्ति ही आती है न ज्ञान की ही पूर्णतः होती है। वैराग्य हुए बिना साधक की परमार्थ पथ में सद्गति हो ही नहीं सकती।

विरागी के साथ संरक्षण, आश्वासन, सन्तोष, तृप्ति, शान्ति, गम्भीरता, धीरता, जागृति, प्रकाश यह सब स्थिर सम्पत्ति रहती है। तुम्हारा जो माइक अनस्थिर सुखद पदार्थों से अनुराग है इससे बढ़कर अनिष्टकर और तुम्हारे लिये क्या होगा? यदि तुम्हें आगे कभी कुवासनाओं और अपराधों एवं असावधानी का कुफल भोगना ही पड़ेगा तो अभी ही उन वासनाओं, अपराधों और असावधानी को दूर करो।

यही तो बुद्धिमानी है भविष्य को तुम वर्तमान में ही स्वेच्छित विधि से अनुकूल बना सकते हो। जब तक तुम सांसारिक विषय–सुखों से अपने मन को हटा नहीं लोगे तब तक उनकी मादकता में मुग्ध होकर मन तुम्हें वहीं फंसाए रहेगा। यदि तुम इस निर्बलता पर, इस मन की विषयासक्ति पर विजय प्राप्त कर लो और उत्तम गुणों से इस मन को भर दो तो संसार की सभी शक्तियाँ तुम्हारी उन्नति में सहायक होंगी। लेकिन अपनी आवश्यकता से भिन्न किसी प्रकार का संग्रह न करो। सत् स्वरूप को न जानकर मोहवश माया के इन मधुर रूपों में, इन मधुर स्वरों में रस लेते हुए, सुख मानते हुए, परिणाम में धोखा खाते, दुःख भोगते हुए कितने युग बीत गए। यदि अब समझ में आ रहा हो तो इस रागासक्ति का त्याग करो। अब तुम अपनी मनोभूमि में कभी भी अधम वृत्तियों को न खेलने दो, इनका त्याग करो, नहीं तो तुम्हारी सत्य–जीवन–संरक्षिका उच्च वृत्तियाँ तुम्हारी सेवा नहीं कर सकेंगी तब तुम अपनी आध्यात्मिक देह को भी इस दुर्गम पथ की यात्रा के योग्य नहीं बना सकोगे। स्मरण रहे! तुम्हारे भीतर शुद्ध संकल्प की दिव्य दृष्टि में एक भी कुसंकल्प भूत न घुसने पावे नहीं तो तुम्हारी समस्त पवित्र रचना छिन्न–भिन्न हो जायेगी।

मानसिक विचारों में से विषय विकार विषवत् विलग कर दो क्योंकि विचारों का विषयों की ओर बढ़ना ही तो विनाशपथ में जाना है। नाशवान पदार्थों या किसी भी क्षेत्र के विनाशी, परिवर्तनशील सुखों में अन्ध आसक्ति ही पतन का हेतु है। हृदय की तमाम लालसाओं,

अभिलाषाओं की पूर्ति का नाम स्वार्थ है। इस स्वार्थ को परार्थ सेवा में बदले बिना तुम अपने सत्य लक्ष्य की ओर आगे कदम ही न उठा सकोगे। जिस वस्तु में तुम्हारा राग है उसी का त्याग करो। यदि तुमने संसार से अभी तक स्वार्थ सिद्ध किया है तो उस पाप अपराध से छूटने के लिये उसी संसार की सेवा करनी पड़ेगी। यदि इन्दियों के संग से मन में विषय चिन्तन का अभ्यास दृढ़ हो गया है तो वह तभी मिटेगा जब निरन्तर परमात्मा के चिन्तन का ही अभ्यास दृढ़ हो जायेगा। जब तक तुम थोड़े अंशों में भी सांसारिक भोग सुखों में अथवा वस्तुओं रूपों की सुन्दरता में मोहित होते रहोगे तब तक परमानन्द परमात्मा से उतने ही अंशों में विमुख रहोगे।

हम अपने या सम्बन्धियों के जिन शरीरों में आसक्त हो रहे हैं वे शरीर किसी भी समय मृत्यु को प्राप्त हो सकते हैं। शरीरों को अपना मानकर उन्हें हम अविनाशी नहीं बना सकते। शरीरों से हम काम ले सकते हैं उनका सदुपयोग कर सकते हैं परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि वे शरीर सदा हमारे साथ न रहेंगे। जिन शरीरों को हम पिता माता पुत्र पत्नी कह कर अपने होने का अभिमान करते हैं वे शरीर हमने नहीं बनाए हैं वे हमारे साथ दीख रहे हैं परन्तु हमारे नहीं हैं– ऐसा देखते हुए वैराग्य होता है।

यदि तुम किसी रूप को सुन्दर मानकर मुग्ध होते हो, दर्शन का रस लेते हो, सुन्दरता में आसक्त होते हो तो यह भी बन्धन है जो कि वैराग्य से ही टूट सकेगा और वैराग्य तभी होगा जब रूप के कारण

तत्वों का ज्ञान होगा तब तुम्हें प्रत्येक सुन्दरता के पीछे छिपे रहने वाले असुन्दर घृणित द्रव्यों का ही दर्शन होगा।

यदि तुम धन के रागी हो तो वैराग्य होने के लिये विवेक दृष्टि से अनुभव करो कि यह धन भी कितना असार वस्तु है। यह धन अविवेकी मनुष्य को प्रायः अभिमानी बना देता है यह नाना प्रकार के व्यसन विलासिता से बांध देता है। धन के मद में मानव कठोर, क्रूर, निर्दयी हो जाता है। यह धन ही गरीबी का कारण होता है। प्रकृति की पार्थिव वस्तु को अपनी मान अभिमानी बने रहना ही धनी होना है और जो वस्तु नहीं मिल रही है, उसकी प्राप्ति के लिये तरसना ही निर्धन होना है।

यदि तुम कुछ भूमि को अपनी भूमि मानकर, किसी वाटिका अथवा वनों उपवनों को अपना मानकर रागी हो तो तुम भ्रमित हो विवेक दृष्टि से देखो–जो भूमि, जो वृक्ष वन वाटिका आदि वस्तुयें देने से किसी के साथ जाती नहीं और लेने से अपने साथ आती नहीं फिर भी लोग लेने और देने के अभिमानी बनते हैं, राग से दूर होते हैं। तुम्हारी समझ में यदि यह बात आ रही हो तो इन सांसारिक पदार्थों के रागी न बनकर विरागी बनो। धन और भूमि के पीछे इस संसार में अगणित युद्ध हो चुके, आज भी हो रहे हैं, आगे भी होते रहेंगे। केवल वह विवेकी हैं, जो वैराग्यवान हैं– इस युद्ध की आग से बचते आये हैं; आज भी बच रहे हैं; आगे भी बचते रहेंगे।

यदि तुम परमार्थ के प्रेमी हो तो अपने भीतर निरीक्षण करो जहाँ कहीं किसी वस्तु या किसी व्यक्ति में राग हो तो विवेकपूर्वक उससे विरागी बनो। जो कोई–सांसारिक वस्तु तथा व्यक्ति के वास्तविक रूप को देख लेता है वह अवश्य ही विरागी होता है। वैराज्ञ यथार्थ दर्शिता का परिचय देता है। महाराजा भर्तहरि ने वैराग्य को बहुत अधिक महत्व दिया है। उन्हें स्पष्ट दीख पड़ा कि भोगों में रोग का भय है, उच्च्व कुल में पतन का भय, अर्थात कलंक का भय रहता है, धन की अधिकता में राजा का भय है, मान में दीनता का भय हैं, बल की अधिकता में रिपु का भय है, रूप में बुढ़ापा का, शास्त्र ज्ञान में वाद विवाद का, गुण में दुष्ट का और शरीर में मृत्यु का भय है इस संसार में जहाँ तक देखो सभी वस्तु भय से घिरी हुई है केवल वैराज्ञ ही अभय पद है।

षट सम्पत्ति

शम

विवेक, वैराज्ञ के साथ छः दैवी सम्पत्तियाँ भी दु:ख निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति में सहायक है। इस षट सम्पत्ति से चित्त शुद्ध होता है। उनमें से प्रथम सम्पत्ति शम है। वैराज्ञ दृढ़ होने पर चित्त की चंचलता दूर होती है अचंचल चित्त जब सत्य लक्ष्य में स्थिर होता है– इसी को शम कहते हैं। सुख के लोभवश ही नाना प्रकार के पदार्थों

से चित्त का सम्बन्ध रहता है। सम्बन्धित वस्तुओं का ही चित्त चिन्तन करता रहता है। चिन्तन का प्रभाव चित्त पर सदैव प्रभाव पड़ता रहता है। चित्त की चंचलता के कारण बुद्धि स्थिर नहीं हो पाती। इसीलिये चित्त के शम अर्थात् शान्त हुए बिना साधक अपने सत्य लक्ष्य को नहीं देख सकता। भोगी व्यक्ति संसार में अनेक का चिन्तन करता है, किन्तु जो सत्यात्मा का योगी है वह सदा एक ही चिन्तन करता है। अनेक के चिन्तन से अशान्ति रहती है, एक के चिन्तन से शान्ति मिलती है। विवेकी, वैराग्यवान ही अनेक के परे जो एक है उसको जानता है और उसी का चिन्तन करता है। एक से चित्त का स्थिर रहना शम है, अनेक में चित्त का चंचल रहना विषमता है।

निरन्तर आनन्दकारी विचारों में ही व्यस्त रहने से, पवित्र का ही चिन्तन करने से शम की सिद्धि होती है। जहाँ शम है वहीं शान्त मस्तिष्क है। उसी में वह बल पाया जाता है, जिसके द्वारा स्वतन्त्रता, स्वाधीनता प्राप्त होती है, वहीं सद्गुणों का विकास दिखाई देता है। संयमी में ही सद्गुणों का विकास होता है, अपना और दूसरों का भी पथ प्रदर्शन वही कर सकता है, जिसका मस्तिष्क स्ववश हो, शुद्ध बुद्धि हो। यह सब विशेषता उसी में पाई जाती है, जिसके जीवन में शम सम्पत्ति प्राप्त हो चुकी है। शम की पूर्णता में संकल्प शान्त हो जाते हैं, संकल्प हीनता से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। यदि साधक सिद्धियों का भोग न करे तो इसी से परमात्मा का योगानुभव होता है।

दम

शम के साथ दूसरी सम्पत्ति को दम कहते हैं। इन्द्रियों को विषय पथ में न जाने देकर रोक रखना दम कहलाता है। शम की दृढ़ता दम के द्वारा होती है, क्योंकि इन्द्रियाँ चित्त की स्थिरता को भंग कर देती हैं, इसीलिये इन्द्रियों की बागडोर सदा खींचे रहना होता है, इसी को दम कहते हैं। मानसिक कुप्रवृत्तियों और इन्द्रियों को स्ववश कर लेना, उन्हें जीत लेना दम है। दम के बिना मन मलिन रहता है, विषाद, उदासी और दुर्बलता बढ़ती है, जो कि भोगासक्ति का दुष्परिणाम है। मन पर स्वाधिपत्य प्राप्त कर लेने से साधक को अपने में आशातीत शक्ति का अनुभव होने लगता है।

संकल्प से कामना का सम्बन्ध जुट जाने पर उससे मन को छुड़ाना अति कठिन हो जाता है, उस समय इन्द्रियों का नियन्त्रण भी सुगम नहीं रहता। इन्द्रियों को स्ववश किये बिना योगाभ्यास सिद्ध नहीं हो सकता। शब्द, रूप, स्पर्श, गन्ध, रस– इन विषयों का इन्द्रियों से संयोग होते ही मन में प्रबल राग या द्वेष का भाव उत्पन्न हो जाता है।

पदार्थासक्ति, विषयासक्ति के बन्धन से मुक्त होने के लिये तुम अपने अन्तःकरण पर अधिकार प्राप्त करो। दृढ़ संयम के द्वारा ही तुम्हारी हर ओर विजय हो सकेगी। तमाम कठिनाइयाँ दूर होंगी। तुम तभी अपने को निर्बल पाओगे– और तभी अपने को पतित होते हुये

देखोगे– जबकि मनोवृत्तियों की दासता में बद्ध होकर सद्विवेक दृष्टि ही बन्द कर लोगे और निम्नविषयानुगामिनी मनोवृत्तियों का जब तुम पर शासन होगा। अतः सावधान रह कर मनोवृत्तियों के लिये संयम की लगाम ढीली न करो।

अपने समय पर, अपनी शक्ति पर, बहुत कड़ी दृष्टि से हिसाब रक्खो और एकान्त में बहुत सावधान रहो। तुम जितना ही सद्गुणों, सद्भावनाओं को व्यवहारों में चरितार्थ करोगे, उतना ही तुममें दृढ़ पुरुषत्व का निर्माण होगा; तुम्हारा जीवन गौरवशाली बनेगा। दुराचरण में प्रयुक्त शक्ति का सदुपयोग करना ही सदाचारी बनना है। एक क्षेत्र पर केन्द्रित शक्ति ही सामर्थ्य कही जाती है– उसी शक्ति को सदाचार में चरितार्थ करना ही बुद्धिमत्ता है। इसी नियम से दुष्ट व्यक्ति सज्जन बन जाता है। दम के बल से ही मानव अपनी प्रकृति में से दुर्भावों को सद्भावों में बदल लेता है। यदि तुम परमार्थ सिद्धि चाहते हो तो दम को परिपूर्ण बना लो, इसी के द्वारा तुम इन्द्रियों को जीत सकोगे।

यह भी ध्यान रक्खो कि बुद्धि को छोटी–छोटी कामनाओं इच्छाओं, आशाओं की पूर्ति में खर्च करते रहने से कभी परितुष्टि तथा शान्ति नहीं मिलती। जिस बुद्धि की शक्ति को विवेकहीन मनुष्य सांसारिक भोग सुखों में खर्च करते हैं, उसी बौद्धिक शक्ति से विवेकी पुरुष सत्य परमात्मा का योग प्राप्त करते हैं,– जिससे कि परम शान्ति मिलती है।

तुम आनन्दमय प्रभु की अभिलाषा प्रबल बनाओ, संसार के सुख की इच्छा न करो। ध्यान रक्खो, अनित्य वस्तुओं से स्थायी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये विषय सुखों में आसक्ति न रख कर इन्द्रियों तथा मन को स्ववश करो।

नाना प्रकार के विषय जनित सुखों के भोग में, यदि तुम्हारे जीवन की शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है, तो तुम्हें जिस प्रकार से भी हो सके, इन्द्रियों का दमन एवं मन का विरोध करना चाहिये। कभी कभी तो, भोग सुखों के प्रति मन में इतनी प्रबल आसक्ति होती है, कि बुद्धि से, सुखासक्ति का दुष्परिणाम देखते हुये भी, उसके त्यागी नहीं हो पाते। कदाचित्, तुम में त्याग का संकल्प उठता भी है, तो प्रलोभनों के कारण दृढ़ नहीं हो पाता है। यदि कुछ त्याग किया भी तो वह प्रायः ऊपर से होता है, जिससे अभिमान की वृद्धि होती है, और भीतर से राग छिपा रहने के कारण वह त्याग स्थिर नहीं रहने पाता, इसीलिये सावधान होकर कहीं पर विचार के बल से, कहीं अभ्यास के द्वारा और कहीं तप अथवा व्रत का आश्रय लेकर पूर्णतया वाह्य और अन्तर से सुखासक्ति के त्यागी बनो। यह स्मरण रखने की बात है, तुम्हारे निम्न स्तरों द्वारा जिस शक्ति से, काम, क्रोध, लोभ, मोहादि दुर्विकारों का व्यापार पूर्ण होता रहता है, उसी शक्ति से उच्च स्तरों द्वारा निष्काम प्रेम, दया, उदारता, आदि सद्‌गुणों की, नित्य के व्यवहार में ही परिपुष्टि होगी।

दम के द्वारा ही अपने अन्तःकरण में साधक को कल्पनातीत दैवी प्रकाश प्राप्त होता है। बुद्धि स्थिर हो जाती है। मन की वृत्तियाँ जब तक बहिर्मुख रहेंगी तब तक सांसारिक परतन्त्रता से छुटकारा हो ही नहीं सकता। दम के बल से प्राप्त होने वाली एकाग्रता में ही वासना, उद्वेग, उत्तेजना तथा विविध इच्छाओं की अनियमित पूर्ति से ही स्वभाव में नीचता, दुष्टता आती है। भोगासक्ति के त्याग बिना हजारों–लाखों उपाय करने पर भी शान्ति नहीं मिलती। इसीलिये इन्द्रियों का, मन का, दमन आवश्यक ही है।

यदि तुममें 'दम' रूपी सम्पत्ति न हो तो अवश्य ही प्राप्त करो, भोगों के द्वारा होने वाली शक्ति ह्रास को देखो, कितने ही भोगियों के विनाश को देखो, परमार्थ लाभ की अभिलाषा को प्रबल और स्थिर बनाओ तभी दृढ़ संकल्प द्वारा मन तथा इन्द्रियों का दमन कर सकोगे।

तीसरी सम्पत्ति उपरति है। इन्द्रिय दमन होने पर मन की वृत्ति जब वाह्य विषयाकार नहीं बनती इसी को उपरति कहते हैं। उपरति दृढ़ होने पर मनोवृत्ति अन्तर्मुखी होती है, बहिर्मुखी वृत्ति योगसिद्धि में अत्यन्त बाधक है इसीलिये विषय वृत्ति से उपरति होना अत्यावश्यक है।

उपरति की दृढ़ता के लिये उन जगत दृश्यों में दोष–दर्शन करना होता है, जिनसे मन की वृत्तियाँ सम्बन्धित रहती हैं। इसके

साथ ही तत्क्षण अपने अन्तर में कोई न कोई आदर्श आधार निश्चित करना पड़ता है, जिसके सहारे बहिर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी रक्खा जा सके।

वहिर्मुखता का अभ्यास मिटाने के लिये अन्तर्मुखता का अभ्यास दृढ़ करना होता है। अपने भीतर जब साधक को साधनाभ्यास का रस आने लगता है तभी उपरति दृढ़ होती है। धारण तथा ध्यान में स्थिर होने के लिये उपरति परम सहायक होती है। जब तक उपरति परिपक्व न होगी तब तक मन दृश्य के प्रभाव से मुक्त न हो सकेगा।

उपरति का दूसरा अर्थ है जीवनाधार, आत्मा के प्रति मन की रति होना अर्थात् अनित्य सुखों के प्रति प्रीति न रह कर नित्य शान्ति तत्व के प्रति प्रीति की दृढ़ता ही उपरति कही जाती है। विषय रति के विरुद्ध आत्म–योग में रति होने को उपरति कहते हैं। सच्ची उपरति वही है जब कि सांसारिक वस्तुओं, व्यक्तियों के प्रति जो प्राणों की स्नेह धारा बह रही है, वह दिशा से पलट कर अन्तरात्मा के प्रति बहने लग जाय। इस प्रकार की उपरति दृढ़ होने पर ही अध्यात्म योग की सिद्धि सम्भव है।

तितिक्षा

उपरति के साथ ही चौथी सम्पत्ति तितिक्षा है। प्रारब्धवशात् या प्रकृति नियम से आने वाले सभी प्रकार के कष्टों–उद्वेगों को धैर्य पूर्वक सहना तितिक्षा है। जिस व्यक्ति में कष्ट–सहिष्णुता नहीं है, वह

व्यक्ति दुर्बल है, वह सत्य योग के पथ पर नहीं चल सकता। कष्ट सहिष्णुता से शक्ति सम्पन्नता आती है। तितिक्षु साधक कष्टों के आने पर चिन्तित, शोकित नहीं होता। चिन्ता तथा शोक से शक्ति का बहुत अधिक अपव्यय होता है, इसीलिये प्रत्येक कष्ट को विवेक वैराग्न के बल पर धैर्यपूर्वक तप की भावना लेकर सहन करना चाहिये, यही तितिक्षा है।

सर्दी, गर्मी, वर्षा के वेगों को शरीर द्वारा सहन करना–शारीरिक तितिक्षा है, इससे शरीर में श्रम करने की शक्ति बढ़ती है, वाह्य वस्तुओं की आवश्यकता नहीं रहती, बहुत थोड़े में ही जीवन निर्वाह हो जाता है। इसी प्रकार काम, क्रोध, मोह, लोभ के वेगों में समस्थिर रहना इनकी पूर्ति का प्रयत्न न करना– यही मानसिक तितिक्षा है। इससे उच्च संकल्पों की पूर्ति कराने वाली मानसिक शक्ति बढ़ती है।

जहाँ भोगेच्छाओं की पूर्ति से शक्ति का ह्रास होता है, दुर्बलता बढ़ती है, वहीं पर तितिक्षा से शक्ति का विकास होता है, सबलता आती है। शक्ति के सबल होने पर ही कोई साधक परमार्थ की सिद्धि देख सकता है। मानसिक पीड़ा और रोगों के रूप में व्याधि जनित कष्टों को सहना भी तितिक्षा है। पूर्ण तितिक्षु पुरुष संसार के सभी प्रकार के कष्टों को सह लेने में परमवीर होता है, उसमें भय चिन्ता व्याकुलता के आने का स्थान नहीं रह जाता।

तुममें जहाँ कहीं दुर्बलता हो, जहाँ कहीं सहिष्णुता की कमी के कारण तुम्हें विविध वस्तुओं तथा व्यक्तियों का आश्रय लेना पड़ता हो वहीं पर तुम तितिक्षु बनो अर्थात् क्रमशः कष्ट–सहिष्णु बनो। सर्दी, गर्मी जितना सह सको उतना अवश्य सहो। व्रतोपवास के द्वारा क्षुधा पिपासा सहने का अभ्यास बढ़ाओ। जब देह, इन्द्रियों के सुख का मनन चिन्तन कम होगा और अभ्यास करते करते जब किंचित भी न रह जायगा, तभी आत्मा–परमात्मा का मनन चिन्तन तथा ध्यान योग दृढ़ होगा। तितिक्षा से देहासक्ति, भोगासक्ति मिटती है। यह आसक्ति वश ही मनुष्य सर्दी, गर्मी के कष्ट की निवृत्ति के लिये कितने ही प्रकार के सामान एकत्रित करते हैं तदनुसार ही लोभी, मोही, अभिमानी तथा सुखद वस्तुओं एवं व्यक्तियों के आगे दीन बनते हैं। तितिक्षा के द्वारा मानव निश्चिन्त स्वतन्त्र होता है।

श्रद्धा

पांचवीं सम्पत्ति श्रद्धा है। शास्त्र और गुरु वाक्य में अटल विश्वास तथा उनके प्रति सद्बुद्धि रखने को ही ज्ञानीजन श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा के बिना ज्ञान नहीं होता, श्रद्धा मनुष्य की अन्तर दृष्टि को खोल देती है। श्रद्धा के बिना गुरुतत्व का दर्शन नहीं हो सकता।

तुम्हारे श्रद्धा–प्रेममय विचारों में ही शक्ति है कि जिसके द्वारा अपने लिये परमानन्द का दिव्य द्वार खोल सकते हैं। कहीं पर हताश न होना चाहिये, अटूट धैर्य रखते हुये निरन्तर श्रद्धापूर्वक प्रयत्न में

संलग्न रहो। यदि तुम निरुत्साहित होकर उदासीन हो जाओगे तो सद्गुरु कृपा–बल के आगे तुम मानो पर्दा डाल दोगे। क्योंकि हताश, निराश, चिन्तित होने में सद्गुरु सहायता नहीं कर पाते। कारण यह है कि यदि कोई अपनी चिन्ता में अधिक व्यस्त रहता है, तो वह अपना ही ध्यान चिन्तन करता है– न कि अपने आराध्य देव का। इसी से आराध्य देव के मध्य में चिन्ता एक पर्दा बन जाती है। तुम्हें व्यर्थ चिन्ताओं, वेदनाओं से बचते रहने के लिये अपने आराध्य देव को निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिये।

किसी भी परिस्थिति में ऊपरी कठोरता और भयानकता में भयभीत मत बनो। सत्य पथ में गम्भीरता के बल से परिस्थितियों का सामना करो, कष्टों के मेघ कैसे भी काले क्यों न हो परन्तु उनके पीछे पूर्ण प्रकाशमय एक रस परमसत्ता सूर्य की भाँति सदा ही विद्यमान है। तुम दुखान्धकार को देख कर क्यों घबराते हो, उसके पीछे ही उसे पार करने पर आनन्द धाम प्रकाश में तुम अपने को पाओगे। सर्वव्यापी सत्य पर अथवा दैवी सम्पत्ति पर श्रद्धा रक्खो, इसी के द्वारा तुम सत्य के अनन्य उपासक हो सकोगे।

जितना ही तुम प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग करोगे उतना ही भय का भूत तुम्हें सफलता के पथ में बढ़ने से रोकता रहेगा। शंका पिशाचिनी तुम्हारा हाथ पकड़कर बैठ जायगी इसलिए निश्छल श्रद्धा के सहारे धैर्य रूपी दण्ड को लेकर परम लक्ष्य की ओर दृष्टि गड़ाये हुये बढ़ो। तुम्हें अपने अन्तर्निहित दृढ़ श्रद्धा से बढ़कर संसार में और

कोई सहायक न मिलेगा जो हीनता की अंधेरी खाई से निकाल सके। तुम अपनी दृढ़ श्रद्धा के द्वारा ही ईश्वरीय ज्ञान को एवं दैवी सम्पत्ति को पा सकोगे। जब तुम दृढ़ श्रद्धा विश्वास के बल पर सत्य पथ पर चलना आरम्भ करते हो तब संसार तुम्हें मार्ग देता है। स्मरण रहे दृढ़ श्रद्धा, दृढ़ संकल्प, दृढ़ निश्चय, दृढ़ व्रत, दृढ़ अभ्यास में ही शक्ति केन्द्रित होती है जिससे कि सफलता मिलती है।

संसार के समस्त धर्मों का प्राण श्रद्धा ही है। श्रद्धा के आधार पर धर्म का महत्व दर्शित होता है। श्रद्धा हृदय की दृष्टि है, तभी तो श्रद्धालु पुरुष को बड़ी सुन्दर शान्ति मिलती है, पर श्रद्धालु भक्त तब तक अंधेरे में ही चलता है जब तक ज्ञान प्रकाश की सीमा में नहीं आता। श्रद्धा के द्वारा ही तुम्हारे अन्तर भावों और सद्गुणों का सुन्दर विकास होता है। पर ज्ञान प्रकाश में उनकी सुन्दर–सदुपयोगिता होती है।

जहाँ साधारण व्यक्ति एक पुरुष के नाम रूप को देखता है, वहीं पर एक श्रद्धालु व्यक्ति उस पुरुष को देखकर नतमस्तक होकर प्रणाम करता है। उसका प्रणाम केवल वाह्य नाम–रूप के प्रति ही नहीं होता बल्कि श्रद्धा दृष्टि से दीखने वाले उच्चतम ज्ञान तथा सद्गुणों, सद्भावों के प्रति होता है। श्रद्धालु व्यक्ति किसी महात्मा में ईश्वरीय विभूति का अनुभव करते हुए, उसी के लिये अपना मस्तक झुकाता है, और कभी न कभी स्वयं को भी दैवी ज्ञान तथा गुणों से सुसज्जित देखता है।

जहाँ श्रद्धा प्रबल होती है वहाँ अहंकार श्रद्धास्पद के आगे अभिमान शून्य होता है, किन्तु जहाँ अहंकार के साथ अभिमान रहता है वहाँ श्रद्धा नहीं होती। श्रद्धालु संयम, सत्य बल पर तत्पर रहता है और जितेन्द्रिय होता है। श्रद्धा में संशय भयानक दोष है, संशय विनाश का हेतु है। मन की चंचलता में संशय परिपुष्ट होता है, एकाग्रता में संशय क्षीण होकर नष्ट हो जाता है। राग तथा द्वेष से मन की चंचलता बढ़ती है, सुख की इच्छा ही संसार में नचाती है। ज्ञानी सत्पुरुष के संग से सद्विवेक होने पर मनुष्य सुख के बन्धन से छूट पाता है। श्रद्धालु पुरुष ही सद्विवेकी होता है।

समाधान

साधक की अभीष्ट–सिद्धि के लिये छठवी सम्पत्ति 'समाधान' है। जब बुद्धि परमात्मा में ही सदा के लिये स्थिर हो जाती है– इसी को समाधान कहते हैं। जिसमें श्रद्धा सुदृढ़ होती है, उसी की बुद्धि में समाधान होता है। जब तक बुद्धि में समाधान होता है। जब तक बुद्धि में स्थिरता, समाधानता न होगी तब तक संशय, सत्य के योगानुभव में बाधा डालता रहेगा अतः संशय का समूल उच्छेद करना अत्यावश्यक है; इसी के लिये सन्त–सद्गुरु का संग करते रहना होता है। गुरु कृपा से संशयों का अवश्य ही नाश हो जाता है।

समाधान होना ही गुरु के उपदेशों का फल है, वास्तविक ज्ञान का परिचय है, खोज का अन्तिम विश्राम स्थल है, गुरुदेव के श्रम की सार्थकता है। सत्योपासना अथवा भक्ति के लिये प्रवेश–मुहूर्त है।

समाधान होने पर ही सत्य लक्ष्य में विवेक दृष्टि होती है, लक्ष्य को स्थिर होकर देखते रहने से ही साधक संसार में भ्रमित होने, तथा भूलने से बच सकता है।

परमानन्द स्वरूप परमात्मा ही मनुष्य मात्र के लिये सत्य लक्ष्य है, उनके योगानुभव बिना किसी को कहीं भी परम शान्ति मिल ही नहीं सकती अतः सत्य–लक्ष्य परमात्मा को बुद्धि युक्त होकर देखते रहने के लिये समाधान अत्यन्त आवश्यक है। स्थिर समाधान के लिये शास्त्र और गुरु का सेवन करो। संशय रहित ज्ञान प्राप्त करो तभी समाधान होगा।

स्थिर समाधान के बिना लक्ष्य में बुद्धि स्थिर नहीं हो पाती, इसीलिये अनेकों साधक नाना प्रकार के साधनों में श्रम करते हुए शान्ति प्राप्त नहीं कर पाते। यात्री अपने लक्ष्य को भूल कर, जितना ही श्रम करेगा वह व्यर्थ हो सकेगा। साधकों! गुरु के समीप रह कर समाधान प्राप्त करो।

मुमुक्षुता

संसार में दुःख निवृत्ति तथा परमानन्द प्राप्ति के लिये षटसम्पत्ति के पश्चात् चौथा साधन 'मुमुक्षुता' है।

जिस प्रकार अहंकार को शुद्ध बनाने के लिये 'विवेक', बुद्धि को शुद्ध बनाने के लिये 'वैराग्य', चित्त को पवित्र बनाने के लिये 'षटसम्पत्ति' आवश्यक है उसी प्रकार मन को अचंचल, निर्मल बनाने के लिये चौथा साधन 'मुमुक्षुता' है।

अहंकार से लेकर देह पर्यन्त जितने भी अज्ञान भूमि में कल्पित किये हुए अर्थात् माने हुए बन्धन हैं उनको सत् स्वरूप के ज्ञान द्वारा मिटाने की इच्छा को ही 'मुमुक्षुता' कहते हैं। सुख तथा दुःख दोनों ही संसार से जीव को बाँधते हैं, जो कोई समग्र हृदय से व्याकुल होकर बन्धनों से छूटना चाहता है, वह मुमुक्ष है।

छूटने की चाह जितनी ही प्रबल होगी उतनी साधन पथ में प्रगति भी अच्छी होगी। जिसके साधन में शिथिलता है उसकी चाह में कमी है। प्रबल चाह अपनी पूर्ति के बिना कहीं नहीं लेने देती, जिसे छूटने की अभिलाषा है, वह बन्धनों में, संचय में, समूह में, संसार–प्रपंच में क्यों सुखासक्त होगा? जो सुखासक्त है, जो सांसारिक वस्तुओं को पाकर हर्षित हो रहा है और खोकर शोक व्यथित, वह मुमुक्ष नहीं है अर्थात छूटने की इच्छा नहीं रखता।

जो साधक मुमुक्ष है, छूटना चाहता है, उसमें विचार शक्ति का तीव्र होना अत्यावश्यक है। बुद्धिमान सज्जनों! अपनी ओर देखो! यदि तुम संसार में कहीं भी किसी संयोग से सुखी तथा वियोग से दुःखी होते हो, तो अवश्य ही बन्धन में हो। जहाँ तक संसार में किसी वस्तु को अपनी मान कर आसक्त हो रहे हो तो अवश्य ही तुमने विचार पूर्वक वस्तु की वास्तविकता का दर्शन नहीं किया है। तुम्हारे सारे बन्धन अज्ञान के ही कारण है, वह यथार्थ ज्ञान से ही मिटेंगे ज्ञान प्राप्त करने के लिये विचार शक्ति का सदुपयोग करो तभी तुममें मुमुक्षुता प्राप्त होगी, बन्धन से मुक्ति की चाह प्रबल होगी और तभी तुम बन्धन मुक्त हो सकोगे, परमानन्द का योग सुलभ होगा।

स्मरण रहे कि तुम अपने ही विचारों, अभिलाषाओं द्वारा अपनी वर्तमान या भविष्य सृष्टि रचते रहते हो और बिगाड़ते भी रहते हो। यदि तुम दुःखी होना पसन्द नहीं करते हो निरन्तर पवित्र सुखदाई विचारों से ही अपने को भरे रहो— निराशा, भय, घृणा, द्वेष आदि से भरे हुए विचारों को कभी न आने दो। यदि तुम परहित, पर सेवा के विचारानुसार कर्म करोगे तो शीघ्र ही वे विचार तुम्हारे वाह्य जीवन में अच्छी दशाओं का रूप धारण करेंगे।

आपका हर एक विचार अपनी शक्ति से अनुकूल दिशा में फैल कर अपना प्रभाव डालता है और उधर से अपने रूप के अनुसार उसी प्रकार का बल लाता है जिससे विचारानुरूप गुणधर्म की पुष्टि होती है। जितने भी पवित्र स्वार्थ रहित विचार है— वे तुम्हारे लिये शान्ति

और प्रसन्नता के लाने वाले दूत है। तुम्हारे विचारों में जिस प्रकार के गुण–धर्म–स्वभाव पुष्ट होकर चरितार्थ होंगे। इसलिए निरन्तर पवित्र आदर्श को ही अपने विचारों में स्थान दो। तुम वैसे ही बनोगे।

नर्क और स्वर्ग के पथ केवल तुम्हारे विचार ही हैं। पाप या पुण्य की ओर, प्रकाश या अन्धकार की ओर, तुम अपने विचार पथ द्वारा ही यात्रा करते हो। ध्यान रहे कि तुम्हारे विचारों में जिस प्रकार के गुण रहते हैं, उन्हीं गुणों से रंगे हुए वातावरण से तुम अपने को घिरा पाओगे। तुम्हारे विचारों से ही अपवित्रता रूपी दुर्गन्ध फैलती है, पवित्रता रूपी सुगन्ध फैलती है। दुर्गन्ध से तो आस पास के लोगों के मस्तिष्क को गन्दे करने के तुम्ही अपराधी बनते हो और यदि सुगन्ध फैलाते हो तो अपने निकटवर्ती संसार के मस्तिष्क को तुम और स्वस्थ बनाने के पुण्य भागी होते हो। आज तुम अपने भीतर जैसा कुछ स्वभाव, गुण पाते हो वह तुम्हारे ही किसी समय के विचारों का फल है। इसी प्रकार तुम्हारा भविष्य भी आज के विचारों पर निर्भर है।

तुम अपने जीवनोद्देश्य को तभी सफल बना सकोगे जब कि अपने सम्पूर्ण विचार प्रवाह को उद्देश्य की ही ओर लगा दो। तुम अपने विचारों से अलग नहीं हो सकते, क्योंकि मन का विचारों के साथ अभिन्न सम्बन्ध है, परन्तु विचारों के परिवर्तन से तुम भिन्न–भिन्न पथगामी हो सकते हो। अज्ञानी तो बिना सोचे समझे अपने विचारों के पथ से चलता है पर ज्ञानी विवेक दृष्टि से अच्छे पवित्र विचार पथ पर यात्रा करता है। तुम्हारे समस्त कार्य तुम्हारे ही

भले या बुरे विचारों के चित्र हैं, जो पहले मन में छिपे थे फिर आज दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इसी प्रकार तुम्हारा भविष्य आज के विचारों की नींव में गठित हो रहा है।

तुम उसी पदार्थ को (चाहे वह किसी भी क्षेत्र का हो) अपनी ओर आकर्षित करते हो जिसके लिये तुम्हारे अन्तर में विचार होते रहते हैं। प्रेममय विचारों के द्वारा तुम अपने प्रेमास्पद को आकर्षित करते हो और इसी प्रकार भ्रम एवं द्वेष विचारों द्वारा शत्रु को अपनी ओर पथ देते हो। किसी भी प्रकार के विचार गुप्त नहीं रक्खे जा सकते, विचार अपनी गति से शीघ्र ही स्वभाव रूप में परिणत होते हैं और स्वभाव क्रिया–कर्म रूप में प्रकट होकर तदनुसार तुम्हारे आगे फल ला देते हैं, तुमको उनका भोक्ता बना देते हैं। तुम्हारे विचारों से शत्रुभाव या मित्रभाव का जन्म होता है। विचारों के असर से ही तुम मित्रता को शत्रुता में, और शत्रुता को मित्रता में परिणत कर सकते हो। कोई भी पदार्थ या कोई भी सम्बन्धी जो आज अपने विचारों के ही अनुरूप तुम्हें दृष्टिगोचर होता है, वहीं विचारों के बदल देने से दूसरे ही प्रकार में बदलता हुआ दिखाई देगा।

किसी के प्रति सद्विचार पूर्वक सद्भावना रखना ही उसकी भलाई का आरम्भ है और किसी के प्रति अनिष्टकर बुरे विचार रखना उसकी हानि की तैयारी है। तुम्हारे विचारों में तथा शब्दों में तदनुसार कर्मों में ऐसी शक्तियाँ हैं कि जिनका असर दूसरों पर अवश्य होता है। तुम अपने विचारों, शब्दों एवं कर्मों की शक्तियों द्वारा संसार का

हित या अहित करते रहते हो, अतः सावधान होकर निरन्तर केवल पवित्र विचारों को ही अन्तर हृदय में स्थान दो। बुरे अनिष्टकारी विचारों का अपनी पूरी शक्ति से विरोध करो कि वे मन में किंचित भी स्थान न पावें, उनकी झलक आते ही तेजी से ललकार कर सामना करो कि तुरन्त वापिस जावें। अनुभवी महात्माओं का कहना है कि कोई भी अशुद्ध भाव विचार मन में आकर यदि दस मिनट भी रुक जाय, तो उसका असर सूक्ष्म शरीर पर 48 घण्टे रहा करता है।

विचारों की उत्तम प्रवृत्ति से ही शान्तिपूर्ण भविष्य बनता है, अतः तुम अनुचित दोषपूर्ण विचारों का दमन करो। अपने विचारों में स्वयं नियन्त्रित होकर मूर्ख मत बनो वरन् विचारों में नियन्त्रण रक्खो, यही तुम्हारी बुद्धिमानी होगी। यदि तुम अपने मन में स्वार्थपरता से भरे हुए अपवित्र कुविचारों को स्थान देते रहोगे तो इसके दुष्परिणाम को किसी प्रार्थना से, दान से, यज्ञ से दूर नहीं कर सकते, कुविचार के कुफल को केवल सद्विचारों से निराकरण करते हुए तुम अपना भविष्य उज्जवल बना सकोगे। जिनके विचारों के सद्‌गुणों की सचेतन मूर्ति खेलती है, विजयी जीवन केवल उन्हीं का देखा जाता है। निरन्तर पवित्र विचारों द्वारा ही जीवन में सद्‌गति होती है और विवेक दृष्टि बढ़ती जाती है।

जिस प्रकार मनुष्य अपने विचारों से सम्बन्धित सांसारिक पदार्थों को कभी न कभी प्राप्त ही कर लेता है, उसी प्रकार अन्य लोकों के अलौकिक पदार्थों को भी अपने विचार पथ द्वारा ही प्राप्त करता है।

देव लोक में अदृश्य दैवी शक्तियों से भी भक्ति के विचारों द्वारा ही सम्बन्ध स्थापित होता है, और वे शक्तियाँ इसी पथ से अपने भक्त की सहायता करती रहती है। विचारों का रूप होता है, और रंग भी होता है। यह रूप तथा रंग दिव्य दृष्टि वाले महापुरुषों को स्पष्ट दीखता है। सुन्दर विचारों का रूप मनोहर होता है, और भयानक विचारों का रूप रंग भी भयानक भद्दी आकृति प्रकृति का होता है।

तुम्हारे विचार जब तक देह, इन्द्रिय, मन के स्तर में केवल विषय सुखाभिलाषा से भरे हैं, तब तक विचार–रूप अत्यन्त कुरूप भद्दे पशुओं की सी आकृति के होते हैं– जो कि तुम्हारी शक्ति से पुष्ट होकर तुम पर बुरा प्रभाव डालने वाले होते हैं, तुम जितना ही परोपकार–परायण भक्ति, श्रद्धा भाव से अपने हृदय को पूर्ण पाते हो उतने ही अंशों में तुम्हारे द्वारा ऐसे विचारों के देव रूप संसार के हितकारी सिद्ध होते हैं, कि तुम अनायास ही परम पुण्य के भागी होते जाते हो। तुम अपने विचारों द्वारा ही या तो स्थूल विनाशी जीवन की सेवा कर रहे हो या इससे विरक्त होकर अपने अन्तर शरीरों को देव लोक प्रकृति से बने हैं, उन्हें बलवान बना रहे हो। यदि तुमने मानव रूप में अपने अन्तर शरीरों को विचारों द्वारा, सद्भावनाओं, सद्गुणों एवं सद्ज्ञान से पुष्ट न कर पाया तो उच्च लोकों में तुम्हारी पहुँच न हो सकेगी। अन्तर के मनोमय, विज्ञानमय, शरीर के बलवान होने पर ही जीवात्मा उच्च लोकों में पहुँच पाता है।

अपनी भौतिक व्यक्तिगत लालसाओं, इच्छाओं पर विजयी होकर परोपकार पूर्ण सद्कृत्यों, सद्भावनाओं द्वारा अपने को इस भौतिक देह, इन्द्रिय–सुख–वासना के कारागार से मुक्त कर लो। सदा उच्च आदर्श का विचार करो, तुम वैसे ही बन जाओगे। तुम जिसके लिये जैसा विचार करते हो, वह विचार अपने गुण रूप से उस व्यक्ति को अपनी शक्ति से घेरे रहता है। यह विचार प्रवाह, बुद्धि से ज्ञान रूप में दिखाई पड़ता रहता है। तुम अपने विचारों से सम्बन्धित मृत–जीवों को परलोक में भी सहायता दे सकते हो, जो कि अधम–वासना बद्ध नीचे लोकों में नर्क दुःख का भोग कर रहे हों। इसी प्रकार उच्च पवित्र आत्माओं से विचार–चिन्तन द्वारा श्रद्धा–भक्तिमय सम्बन्ध स्थापित कर इस भूलोक में आशीर्वाद तथा कृपा प्राप्त कर सकते हो।

यहाँ तक गुप्त रहस्य समझ लो कि तुम कहीं भी, किसी के प्रति भी, जहाँ तुम्हारे विचार, श्रद्धा, भक्ति का रूप धारण कर लें तो उसी व्यक्तित्व में तुम्हें महानता के दर्शन हो जायेंगे। जिस व्यक्तित्व में सर्व साधारण लोगों को कुछ भी विशेषता नहीं दृष्टिगोचर होती है, उसमें तुम्हें ईश्वरीय दिव्यता का बोध होगा–क्योंकि सत्य सर्वत्र पूर्ण है– उसे तुम श्रद्धा–भक्ति के विचारों से कहीं भी अवगत कर सकते हो–तभी कहा गया है–

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होइ मैं जाना।।

जहाँ कहीं दो व्यक्तियों में, दो जातियों में, दो समाजों में, दो देशों में मित्रता और कहीं शत्रुता की क्रिया दिखाई देती है, यह परस्पर द्वेष या प्रेम के विचारों के ही परिणाम हैं। कोई मनुष्य या कुटुम्ब या जाति या देश जहाँ तक अपने ही स्वार्थ सुख की सिद्धि के लिये स्वार्थी विचार रखता है, वहीं तक वह अपना भविष्य अन्धकारमय बना कर दुःखद नर्क की रचना करता रहता है। यदि इसके विपरीत कोई मनुष्य या कोई कुटुम्ब या जाति या देश अपने व्यक्तिगत अह ं की स्वार्थ सुख, लिप्सा त्यागकर, परोपकार, दया एवं निष्काम प्रेम के विचारानुसार कर्म करता है, तो वह अपना वर्तमान और भविष्य प्रकाशमय बनाते हुये शान्ति का सदैव के लिये द्वार खोलता है।

कोई भी मानव सद्विचार पथ से मानवता के ऊँचे ऊँचे सोपानों में चढ़ते हुये देवत्व की सीमा में पहुँच सकता है। इसके विरुद्ध असद् विचार रूप पथ से कितने नीचे स्तरों में भटकता हुआ, भयानक दुःखों, यातनाओं से भरी दुनिया में ही ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह मद–मत्सर आदि के नियन्त्रण में आबद्ध रह कर अपनी शक्ति को खोता रहता है। तुम इस सद्विचार पथ में ही धर्ममय पवित्र आचरण बना सकोगे, क्योंकि जब तक कुछ करना है तब तक धर्म का आश्रय पकड़ना होगा। उस धर्म को जिसके धारण करने में भय रहित शान्ति बल की प्राप्ति होती है। धैर्य, क्षमा भाव, इन्द्रिय दमन, लालच–चोरी का त्याग, अन्तर बाहर की शुद्धि, मनोनिग्रह विद्या और बुद्धिमत्ता, सत्य भाषण, क्रोध त्याग धर्म के लक्षण हैं।

अपने भीतर की बुराइयों और दुर्गुणों को हटाने का सदा प्रयत्न करते रहों तुम अधिकतर मौन रहो, बोलो तब विवेक दृष्टि से देखकर सत्य–प्रिय और हितकर शब्द बोलो। यह भी समझ लो कि तुम किसी लम्बे वाद–विवाद में अधिक बलपूर्वक हास्यालाप करोगे तो व्यर्थ ही तुम्हारी शक्ति का ह्रास और समय का दुरुपयोग ही होगा। बहुत जोर की हँसी से भी अन्तर–शरीर पर हानिकर प्रभाव पड़ता है। जिस तरह पुण्य के सौन्दर्य का मूल्य उसकी सुगन्ध से बढ़ता है, उसी तरह मनुष्य में सौन्दर्य–सुगन्ध उसका सच्चरित्र है। तुम्हारे द्वारा उसी प्रकार के भावपूर्ण कर्म होंगे जैसा तुम्हारा चरित्र होगा। यह भी समझ लो कि तुम्हारे जीवन में साधना का लक्ष्य किसी प्रकार की सिद्धि–चमत्कार ही न होकर सद्गुण–विकास होना चाहिये।

तुम स्वयं सत्य असत्य का विवेचन करो सत्य को न देख सकने के कारण ही तुम मिथ्या अहं की भावनाओं से भयभीत होते रहते हो। इस अहं की रक्षा के लिये ही आवश्यकताओं का संग्रह होता है, इसी से स्वार्थ–बुद्धि उत्पन्न होती है यहीं पर तमाम दुःख उत्पन्न होते हैं। वास्तव में तुम्हारे मन की दशा दृश्य के अनुसार ही बनती रहती है। हर एक दृश्य का अपना असर होता है। दृश्य के प्रभाव, दृष्टा के मन पर पड़ते रहते हैं। जब तक तुम दृश्य के वास्तविक रूप को न समझोगे तब तक दृश्य के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते, और तब तक क्लेश नहीं मिट सकते। दृश्य के प्रभाव से बचने के लिये या तो विवेक–दृष्टि द्वारा दृश्य के असार रूप के ज्ञाता बन जाओ या फिर

ऐसे परम आदर्श के दर्शन–सुख से अपने को भर दो कि किसी दृश्य के देखने का अवकाश ही न रह जाय।

इसी प्रकार इस देहाभिमान को मिटाने के लिये निरन्तर आत्म चिन्तन दृढ़ करना होगां स्मरण रहे कि आत्मस्थ होने का शक्तियों का विकास होता है और इन्द्रिय–सुखोपभोग से शक्तियों का विनाश होता है। सत्य–योग लाभ के लिये तुम स्वतन्त्र हो लेकिन भोग के लिये परतन्त्र हो। यह भी समझ लो कि जिस प्रकार सदाचार से शारीरिक उन्नति होती है और दूसरे की सेवाओं से मानसिक उन्नति होती है उसी प्रकार वैराग्ञ, त्याग से ही आत्मिक उन्नति होनी निश्चित है।

यह स्मरण रहे कि तुम जिस प्रकार की वस्तु के प्रति कामना रक्खोगे उसी वस्तु की ओर तुम्हारा आकर्षण होगा। तुम अपनी कामनाओं के कारण वहीं पहुँचोगे जहाँ अपनी कामना की तृप्ति सरलता से कर सकोगे। कामना के पथ से तुम्हारी शक्ति का प्रवाह बहिर्मुख होता है, इसलिये अपनी इच्छाओं, कामनाओं को बहुत सावधान होकर समझो। परम लक्ष्य सत्य–योग की सहायक कामना के अतिरिक्त और सभी प्रकार की कामनाओं का बहिष्कार करो। स्मरण रहे यदि तुम केवल इन्द्रियों के विषय सुखों को त्यागते हो तो इतने से ही काम न चलेगा, इसलिए सर्वभावेन अहंकार की वृत्तियों तथा अहंकार को प्रिय लगने वाली समस्त वासनाओं और तज्जनित अभावों की चिन्ता का त्याग करो, बस तभी तुम अपने को इस अहंकार मय जीवन के बन्धन से मुक्त पाओगे। तभी तुम सर्वांगों को बल, तेज,

सौन्दर्य, शक्ति प्रतिभा से सुसज्जित कर इस मानवता में दैवत्व को प्रतिष्ठित देखोगे।

ध्यान देकर सुन लो जब तुम सांसारिक सुखों के लिये इच्छा होने पर पंगुवत बन जाओगे तभी परमानन्द के पथ में तुम चल सकोगे और जब तुम सांसारिक दृश्य देखने के लिये अन्धवत् बन जाओगे तभी तुम प्रेम सौन्दर्य से सुशोभित परमानन्द स्वरूप को देख सकोगे, और जब तुम सांसारिक प्रपंचों के सुनने में बधिरवत हो जाओगे तभी तुम परमानन्द दिव्य वाणी, अन्तर सत्य एवं ईश्वरीय आदेश को सुन सकोगे। जब तुम संसार के सामने सर्वांग मौन धारण करोगे तभी उस परमानन्द परमाधार परमात्मन् को सर्वांगों द्वारा पकड़ सकोगे। जब तुम संसार के लिये जड़वत बन जाओगे तभी तुम अपने को परम मुक्तिलाभ के लिए सतत चैतन्यवत पाओगे।

जब तक आप दुःख अप्रसन्नता, चिन्ता से मुक्ति नहीं पा सकते जब तक विरागी होकर अपने को निर्भय न बना लो, क्योंकि इस स्थिति के पहले हर स्थल पर भय रहता ही है। निष्काम भाव से समबुद्धि रखकर कुशलतापूर्वक कर्म करने को जिस प्रकार कर्मयोग कहते हैं, और पवित्रता पूर्वक, निश्छल, सरल सद्भावमय परम प्रेम की शैली को मुक्तियोग कहते हैं, उसी प्रकार असंगता, निरीहता, निस्संकल्पता की ताम्पस्थिति को ज्ञानयोग कहते हैं।

यथार्थ ज्ञानी को न कहीं हानि है, न बन्धन है, न दुःख है। अज्ञानी ही संसारासक्त है, विषयासक्त है, जब तक उसका मन विषय विरक्त होकर पवित्र नहीं होता तब तक चाहे जितना शास्त्र पढ़े, चाहे जितना बड़ा विद्वान बन जाय, पर आत्मज्ञान के सत्य प्रकाश में वह नहीं स्थिर हो सकता। अनुभव करो जो परमाधार तत्व–सर्वमय है, सबका जीवन है, जो आत्मा रूप में भीतर बाहर ओत–प्रोत है, उसी में मनोवृत्तियों का समाहित होना तमाम साधन का लक्ष्य है, इसीलिये तुम इसी का ध्यान, चिन्तन करते रहो यही उत्तम साधन है। ध्यान करते करते जब चित्त स्वरूप में अपना व्यक्तिगत अहं तन्मय हो जाय तब यही पराभक्ति है, यही पूर्णता का बोध है। यही चतुष्ठय साधन की सिद्धि है।

तुम्हारे सामने इन चार साधनों का विवरण दिया गया है, इन साधनों द्वारा भक्ति, मुक्ति, परमशान्ति, सत्स्वरूप–स्थिति– जो तुम्हारा लक्ष्य हो–प्राप्त कर सकते हो। जिन साधकों को अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती, अवश्य ही उनमें इन्हीं चार साधनों की कमी निकलेगी। अब चतुष्ठय साधन सम्पन्न पुरुष के लिये साधन पथ में चलते हुए जिस स्वाध्याय की आवश्यकता है, उसी पर आगे विचार किया जा रहा है।

स्वाध्याय

पुस्तकों का ही पढ़ना नहीं, वरन अपने जीवन को पढ़ना, समझना स्वाध्याय है। मन, वाणी तथा शरीर के द्वारा होने वाले प्रत्येक कर्म को देखना, कर्मों के पीछे या अशुभ भाव को देखना और भावों के पीछे रहने वाले स्वार्थों, परार्थी या परमार्थी विचारों को देखना ही वास्तविक स्वाध्याय है।

ज्ञानी महापुरुषों की तो यही सम्मति है कि अपनी जीवनरूपी पुस्तक को पढ़ो। जीवन में कर्म व्यापार के स्वाध्याय से ही अपनी सुन्दरता असुन्दरता का दर्शन होगा।

अपना अध्याय करते हुए तुम दोषों का त्याग कर सकोगे और सद्गुणों, सद्भावों, सद्कृत्यों का ही पक्ष लेकर जीवन को पवित्र एवं सुन्दर बना सकोगे।

यदि तुम अपने निकटवर्ती संसार को पवित्र सुखमय बनाना चाहते हो, उसके तमाम दोषों को दूर करना चाहते हो, तो एक मात्र सच्चा उपाय यही है कि तुम अपने आपको पवित्र सुखमय बनाओ, अपने तमाम दोषों को दूर करो। यदि तुम दृढ़ संकल्प द्वारा अपने आन्तरिक जीवन को सुधार लो तो अपने वाह्य जीवन में वह उन्नत दशा बड़ी सरलता से आ जायेगी, जिसके लिये तुम प्रायः व्याकुल हो उठते हो। यदि तुम कुछ अवस्थाओं को और दुःखद घटनाओं को अनिष्टकारी समझते हो, तो ध्यान रहे उसी स्थान से तुम्हें परमानन्द

का पथ खुला मिलेगा। तुम दुःखद परिस्थितियों से ही धैर्य, सहनशीलता, साहस आदि सद्गुण बढ़ाते हुए सुन्दर शान्तिपूर्ण भविष्य बना सकते हो। तुम समयाभाव की शिकायत न करो बल्कि कार्य–शीघ्रता की सावधानी रख कर विधिपूर्वक कर्तव्य पालन करो।

वाह्य परिस्थितियों का वहीं तक प्रभाव पड़ता है जहाँ तक तुम असावधानी से पड़ने देते हो। स्वार्थ त्याग तथा धैर्य और सहिष्णुता के द्वारा तुम अपनी रक्षा कर सकते हो। वास्तव में दुरावस्था रूपी कण्टकों के बीच में ही सबसे उत्तम मनुष्य रूपी पुष्प खिला करते हैं कठिनाइयों और विरोधों के बीच में ही सुन्दर सद्गुणों का समुचित विकास होता है। तुम सावधान रहकर किसी की क्रूरता का उत्तर अपने सद्व्यवहारों से दो। अपने ऊपर पूर्ण अधिकार रखने का प्रयत्न कभी शिथिल न करो। सत्य की भक्ति के लिये सहनशीलता, सरलता, समता आदि जो कोई सद्गुण सहायक हो उसी का आश्रय लो। अपने को किसी ऐसे कर्तव्य पर या ऐसी अनुचित स्वार्थ–सिद्धि के लिए क्षमा न करो जिसमें सत्य–धर्म कलंकित होता हो। अपने आप पर सदा शासन रक्खो। सद्गुणों के अभाव में यदि तुम धनी, वैभव–सम्पन्न, उच्च–पदाधिकारी बन जाओ तब भी भिखारी ही रहोगे और तुम्हारा अधःपतन ही होगा।

तुम्हारे पास जो कुछ भी है यदि उससे तुम भलाई नहीं करते और अधिक के लिये तरसते हो तो तुम अधिकारी नहीं हो। ध्यान रहे चाहे कितने ही गरीब तुम क्यो न होओ पर स्वार्थ–त्याग के द्वारा ही

तुम अधिकाधिक लाभ को प्राप्त कर सकते हो। यह भी देख लो कि जो मनुष्य अपने अहं के ऐहिक सुख–स्वार्थ के लिये लोलुप रहता है उसमें भोग, विलासिता, घमण्ड, घृणा, क्रोध, लालच, हठ आदि दुर्गुणों के कारण दरिद्रता, दुर्बलता ही बढ़ती है। सच्चे धनी और शक्ति सम्पन्न तो वे हैं जिनमें विनम्रमा, पवित्रता, धैर्य, गम्भीरता, क्षमा, दयालुता, स्वार्थ–त्याग, परहित भाव की क्रियात्मक दृढ़ता होती है।

यह भी समझ लो जहाँ अपना ही सुख–प्रधान है, उस स्वार्थी व्यक्ति को, आशंका, दुःख, चिन्ता–भय, क्षोभ, निराशा, निरुत्साह आदि से भरी परिस्थितियाँ तब तक दबाती रहेंगी, जब तक वह सत्य पथानुयायी होकर स्वार्थ त्यागी न होगा, क्योंकि उपरोक्त पीड़ायें स्वार्थ के फल स्वरूप है।

यदि तुम अपनी समस्त आन्तरिक शक्तियों को पूर्ण रूप से वश में कर सत्य–पथ के पथिक बनते हो तो तुम स्वयं एक आदर्श पतितोद्धारक हो और यदि तुम उन्हीं के वश में होकर दास बन जाते हो तो तुम्हीं एक पतित हो, पापी और उद्धारक में इतना ही अन्तर है।

यह भी स्मरण रहे कि वह मनोत्तेजना जो किसी क्षणिक आवेश से आ जाती है, वह शक्ति नहीं है, उस पर विश्वास न करो। वह एक तरह की कुछ देर के लिये आंधी है, जो शान्त हो जायेगी। आवेश, उत्तेजना तो केन्द्रित शक्ति का अपव्यय है। इसीलिये किसी भी प्रकार की ऐहिक कामना की उदण्ड वृत्ति को निश्चित इच्छा

शक्ति से रोकते रहना, शक्ति को स्ववश करना है। तुम दुःखी होकर किसी अभाव में दूसरों को दोषी न ठहराओ। याद रक्खो, स्वर्ग–सुख और नर्क–दुःख का कारण तुम्हारा ही मन है। दोषी मन से ही दुःख और सद्‌गुणी मन से ही पाप रहित सुख प्राप्त होता है। यदि तुम शान्ति चाहते हो तो वह वासनाओं, इच्छाओं के त्याग से ही मिलेगी।

ध्यान रहे तुम्हारी नाना प्रकार की कामनाओं इच्छाओं में ही सारी पीड़ायें गर्भित हैं। जितना ही तुम स्वार्थ और क्षुद्र अहं के प्रमोद में लिप्त होते हो उतना ही नर्क–दुःखों की भूमि में उतरते हो। इस अहम्मन्यता के परे, परमाधार सत्य, जो शुद्ध चिन्मात्र तत्व है, उसमें तन्मय होने का प्रयत्न करो, तभी तुम परमानन्द का अनुभव करोगे। सीमित अहंकार, मानव को अन्धा बना देता है, सत्य ज्ञान रूपी प्रकाश के आगे यही बादल बन जाता है, इसके द्वारा सदा दुःख वर्षा ही होती है, इसलिये स्वार्थ का दमन करो। तुम यह भी चिन्ता न करो कि तुम्हारे आसपास सब स्वार्थी, अन्यायी, विधर्मी पुरुष हैं, बल्कि सावधान रहो कि तुम उन सबके समान न बन जाओ। तुम जितना ही विनयी होकर अपने ऊपर विजय प्राप्त करोगे, दैवी शक्तियाँ उतना ही तुममें विकसित होगी।

संसार के सुख या दुःख तुम्हारे ही हृदय के अनुभव मात्र हैं, जो तुम वाह्य पदार्थों पर निर्भर करे हो। विवेक दृष्टि से देखने पर ये सुख–दुःख कुछ और ही रूप में दिखते हैं। यह दृष्टि न खुलने तक आयु से वृद्ध होने पर भी मनुष्य, बालक के समान है, क्योंकि हर एक

वस्तु के गुण स्वभाव को न जानने के कारण, वह अपने अस्वाभाविक अनुचित रागासक्ति के परिणाम से दुःखी होकर रोया करता है।

वास्तव में तुम्हारे ऊपर जो कुछ भी शोक, दुःख, विपतियाँ आती हैं, वह ठीक नियम से आती हैं, जब कि तुम उन्हीं के योग्य होते हो। तुम्हें जो कुछ भी अपने अधिकार में दिखाई देता है, उसी का अच्छा से अच्छा सदुपयोग करो। यदि तुम थोड़े से थोड़े समय को, शक्ति को, व्यर्थ खोते रहते हो, तो अधिक समय तथा शक्ति की आकांक्षा करना व्यर्थ ही है। क्योंकि फिर तो तुम और भी आलसी प्रपंची बन जाओगे।

यदि तुम अपनी साधारण रुचियों, कामनाओ का लालन–पालन करते हो तो अपना जीवन दुर्बल और अनुपयोगी बनाते जाओगे। अतः जीवन को सदुपयोगी सिद्ध होने के लिये अपनी छोटी–छोटी इच्छाओं, रुचि–अरुचि की भावनाओं पर विजय प्राप्त करो। मोह–ममतावश प्रलोभनों और घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, लोभ की ओछी वृत्तियों तथा इसी प्रकार क्षुद्र अहं की दरिद्रतापूर्ण चेष्टाओं पर शासन रखते हुए शक्ति और समय को परमार्थ लाभ के लिये ही सदुपयोगित होने दो।

अपने ऊपर इस प्रकार का स्वाधिपत्य प्राप्त करने से शक्ति बढ़ती जाती है। कोई भी कठिनाई ऐसी नहीं जिसे तुम अपनी केन्द्रित शक्ति से एकाग्रचित्त होकर, शान्तिपूर्वक जीत न सको। वास्तव में दुःख, दरिद्रता, शोक, रोग विश्व की वस्तुओं से उत्पन्न नहीं होते हैं।

तुम अपने सत्य लक्ष्य के अतिरिक्त और किसी भी वस्तु को महत्व न दो। अपने सच्चरित्र बल विकास के लिये पवित्र आदर्श का सहारा रक्खो। तुम्हारी मानसिक अभिलाषायें, हार्दिक भाव, पवित्र आदर्श के अनुकूल ही होनी चाहिये।

तुम अपने पवित्र भावों एवं अभिलाषाओं से अपने अन्तर्बल को बढ़ता हुआ पाओगे। यह भी याद रक्खो कि जिन पदार्थों से तुम भय खाते हो, जो तुम्हारी उन्नति के शत्रु हैं उनसे किसी तरह सम्बन्ध न रक्खो। तुम्हें स्मरण रहे कि जिस प्रकार का गुण तुममें प्रबल होगा उसी प्रकार के गुण वाली वस्तु या व्यक्ति तुम्हारे चतुर्दिक एकत्रित मिलेंगे। तुम्हारा जीवन दुःख निवृत्ति के लिए ही होना चाहिये। अपनी शक्ति पर विश्वास लाओ, संशय न रक्खो। क्योंकि संशय से तुम्हारी उत्पादक शक्ति नष्ट होती है। यह संशय तुम्हारी परिवत्र अभिलाषाओं को शक्तिहीन एवं पंगु बना देता है।

तुम अपने परम लक्ष्य की ओर बढ़ते हुये, अपने जीवन की दुःखमय घटनाओं का मनन न करो, ऐसा करने से तेज कम होता है, प्रतिभा मन्द होती है। तुम अपने जीवन के उन सुनहले स्वप्नों का भले ही दर्शन करो जिनसे तुम्हें साहस, सान्त्वना मिली है, जहाँ से प्रकाश के लिये, बल के लिये आश्वासन विश्वास का आधार मिला है। तुम अपने ऊपर उदासीनता की काली चादर कभी न डालो, यह बहुत ही अशुभ और भयानक वस्तु है। यह भी ध्यान देकर समझ लो, कि तुम अपने क्षुद्र अहं को जितने भी पदार्थों का स्वामी मान रहे हो, तुम

जितनी सीमा में किसी को अपने बन्धन में बांधकर स्वाधिपत्य का भोग कर रहे हो वहाँ तक तुम स्वयं कदापि मुक्त नहीं हो। तुम यदि किसी को बांधे हो, तो स्वयं उससे बंधे हो, स्वतंत्र होने के लिये तुम्हें अधिकार में बाँधे हुओं को मुक्त करना पड़ेगा, तभी तुम उनसे मुक्त हो सकोगे।

जब तक सुख भोग की इच्छा है, तब तक तुम्हें कर्म करना ही पड़ेगा। तुम्हें बाँधने वाली डोरी तुम्हारी ही हर एक वासना है। वासना ही तुम्हें इधर उधर लोक परलोक में घुमाती रहती है। तुम्हारी वासना के अनुसार ही तुम्हारा पुनर्जन्म निश्चित होता है। यह भी स्मरण रहे कि अपने भावों के अनुसार ही तुम संसार को और संसार के पदार्थों को देखते हो। वास्तविक रूप किसी भी वस्तु का कुछ भी हो, लेकिन तुम जिस वस्तु का जिस भाव से चिन्तन करते हो वह वस्तु तुम्हें वैसी ही प्रतीत होगी।

पूर्व काल में जिस प्रकार के अभ्यास से तुम्हारी वासनाएं कामनायें दृढ़ हुई हैं उन्हीं की साकार मूर्ति तुम्हारा यह शरीर है। वासनाओं कामनाओं के पवित्र होने से ही मन पवित्र होता है। सांसारिक पदार्थों की वासना या सुखों की वासना दृढ़ होने को ही बन्धन कहते हैं। किसी भी वस्तु की इच्छा या किसी से द्वेष करना ही बन्धन है। इच्छा तथा द्वेष से छूटना ही बन्धन से मुक्त होना है। तुम्हारा बन्धन तथा मुक्ति मन ही के हाथ में है। मनोभावों के अनुसार ही तुम्हारी स्थिति है। तुम्हारे मन में जो निश्चय दृढ़ हो गया है उसे

तुम्ही हटा सकते हो। यदि तुम अपने मनोबल को शुद्ध और दृढ़ एवं प्रभावोत्पादक बनाना चाहते हो तो विवेक दृष्टि द्वारा अज्ञानान्धकार से निकल कर अहंकार और आसक्तियों से अपने मन को मुक्त करो। सभी प्रकार की आसक्ति परमार्थ–साधन में बाधक है। केवल सत्स्वरूपासक्ति ही परम कल्याणमय है।

विविध पदार्थों की आसक्ति से मुक्त मन में ही दृढ़ संकल्प केन्द्रित होता है। इसी बल के द्वारा तुम शक्तिशाली प्रलोभनों पर विजय प्राप्त कर सकोगे। तुम निम्न प्रकृति की इच्छापूर्ति के पक्षपाती कभी न बनो। फलासक्ति, कर्मासक्ति, संस्कारासक्ति एवं कर्तव्याभिमान से रहित होकर कर्तव्य कर्म करो। सुखेच्छा के वशीभूत होकर बारम्बार किया हुआ कार्य स्वभाव बन जाता है यह भी बन्धन ही है। भावोद्देश्य की पवित्रता के कारण एक निकृष्ट कर्म भी पुण्यमय तथा सुखद होता है।

प्रायः काम, क्रोध मोहादि की दुर्भावना को त्याग करने एवं इनके आवेगों से बचने के बदले यदि तुम उलटा इन्हीं के शिकार होते रहते हो तो इसका कारण यह है कि किसी दोष दुर्व्यसन को छोड़ने की धुन में उस दोष दुर्व्यसन का ही अधिक मनन करते हो, उस पर ही अधिक ध्यान देने से तुम्हारे स्नायु जाल में तदनुसार भावों का प्रभाव पड़ता है। किसी भी दोष दुर्व्यसन का ऊपर से तीव्रता के साथ विरोध करना किन्तु भीतर ही भीतर हठ से दबाये रहना, स्वयं एक ओर से उससे दृढ़ सम्बन्धित रहना है। साधनाभ्यास का दबाव पड़ने पर

सम्भव है कि तुममें निम्नस्तरों की अनुचित इच्छायें, वासनायें ऊपर उमड़ आवें तो उनके दमन में देर न करो।

स्मरण रहे उसी समय तुम्हारी दृष्टि के आगे धुंधलापन आ जाएगा, जब तुम अपनी कामनाओं के पीछे दौड़ना आरम्भ करोगे। तब तुम सत्य शान्ति से विमुख हो जाओगे। तुम्हारे ही मनोविकार तुम्हारी उन्नति में बाधक और दुःखद होते हैं। विपत्तियों से अचानक तुम घबरा न जाओ। देखो विपत्तियां ही तो प्रायः तुम्हें नम्र तथा सरल बनाती हैं उसी समय प्रायः अभिमान नष्ट हो जाता है। यदि तुम प्रतिकूल परिस्थिति से भागने का प्रयास करते हो तो तुम्हें ऐसा कोई स्थान सुरक्षित नहीं मिल सकता, जहाँ कुछ न कुछ असुविधायें, आपदायें, प्रलोभन न होवें अतः प्रतिकूल परिस्थिति का सदुपयोग करो।

तुम किसी प्रकार की निश्चित प्रवाहगति को रोक नहीं सकते फिर भी अपनी रक्षा कर सकते हो। तुम सर्दी, गर्मी, वर्षा को रोक नहीं सकते पर इनके वेगों से अपने को बचा सकते हो। अतः सभी प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों में विवेक तथा धैर्यपूर्वक अपनी रक्षा करो।

जब तक तुम इस भौतिक जगत को ही देखते रहोगे तब तक तुम्हारा मन नाना प्रकार की रुचि पूर्ति में सुख मानते हुये बद्ध रहेगा। ध्यान देकर देखो संसार में ऐसा कौन है जिसे स्वेच्छानुसार सभी

वस्तुएं मिल गई हों। रंक से लेकर राजा महाराजा तक, पापी से लेकर धर्मात्मा तक इस भौतिक जगत में पूर्ण रूप से कोई तृप्त, सुखी न देखा गया। एक न एक अभाव, कुछ न कुछ अपूर्णता सभी के सामने खटकती रहती है। तुम धन्य हो यदि परमात्मा के योगानन्द के लिये संसार में माया, मोह, अभिमान के त्यागी और तपस्वी बनते हो।

तुम्हें अपने परम लक्ष्य की ओर बढ़ने से सावधान रहना होगा। यदि कभी किसी प्रकार के तुम्हारे ऊपर विपत्ति के बादल छाये दीखें तो घबराओ नहीं, स्मरण रक्खो कि वही परीक्षा का समय है। धैर्य धारण करो जो कुछ भी आपका है वह सदा न रहेगा। सत्य प्रेम के योगी होने के लिये पहले तुम्हें नाना प्रकार के दुःख सुख, अन्धकार, प्रकाश, आग, पानी के बीच होकर चलना होगा।

यदि तुम अपने जीवन की तुच्छ सफलताओं पर ही सन्तोष कर लेते हो तो यह तुम्हारी अदूरदर्शिता है। यदि तुम कुछ चमत्कार दिखाने की चेष्टा करते हो, किसी को वर या शाप देते हो तो तुम्हारे भीतर मान तथा माया और लोभ छिपा है। यदि तुम अदृश्य भुवलोक के प्रणियों को और वहाँ के दिव्य रूपों को, शब्दो को ही देखने, सुनने के लिये प्रयत्नशील हो तो तुम्हें स्वर्गीय सुखों का लालच है। यदि तुम लोगों के सामने बहुत अधिक विद्वान समझे जाने के लिये अनेकानेक धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करते हो, अपना नाम प्रसिद्ध करने के भाव से अच्छे ग्रन्थ लिखते हो तो तुम्हारे मन में बड़ाई, प्रतिष्ठा, कीर्ति की कामना है। यह सब बातें जब तक तुम्हारे साथ हैं तब तक

तुम संसार से ही बंधे हुए हो और सत्य लक्ष्य को भूले हुए हो। जब तुम किसी भी व्यक्तित्व से बहुत अधिक घनिष्ठता दृढ़ करके उसी पर निर्भर रहने लगते हो और मनुष्य के क्षणस्थायी प्रेम, कृपा के लिये हाथ पसारते हो तब भी ऐसी मनःस्थित रहने के अपमान से, या किसी प्रकार की हानि के पश्चात् दुःख, शोक से व्याकुल होते रहते हो तब भी तुम अपने सत्य लक्ष्य से विमुख हो।

तुम अपना हर एक आरम्भ सम्हाल लो कहीं भी उसे तुच्छ छोटा न समझो जो महान पुरुष, विद्वान पुरुष अपनी प्रतिभा बुद्धि विशालता से दुनिया को चकित करते हुए विजयी जीवन बिताते हैं भले ही वे कभी छोटे से खिलौने के साथ खेलते हुए बालक रूप में दिखाई देते थे पर उनके भीतर संस्कार बीज बहुत सुन्दर थे तभी वे महानता को धारण कर रहे हैं। तुम्हारे भीतर से वही गुण या दुर्गुण मूर्खता या विद्वता, सद्चरित्र या दुश्चरित्र प्रगट होंगे जिस प्रकार का बीज आरम्भ में पड़ गया है उसी प्रकार अपने बीज के अनुसारतम फल भी काटोगे।

जीवन का आरम्भ, युवावस्था को आरम्भ, व्यवसाय का आरम्भ, साधना का आरम्भ, सभी आरम्भों को यदि पूर्ण तत्परता से सम्हालेंगे तो सफलता भी सुन्दर होगी। सर्व प्रथम तुम अपने दिन के प्रारम्भ को प्रातःकाल से ही शुद्ध रूप में सम्पादित करो, तुम देखोगे कि दिन भर का शुभ या अशुभ परिणाम प्रातःकाल के आरम्भ पर ही निर्भर है। किसी आरम्भ को यदि तुम निर्बलता, आलस्य, प्रमाद, निराशा, ग्लानि,

खीझ से शुरू करते हो तो अपनी सारी यात्रा को कलुषित कर लेते हो। और यदि आरम्भ को ही उत्साह, साहस, आशा, धैर्यपूर्वक सुसज्जित करते हो तो तुम वीरता के साथ लक्ष्य प्राप्ति के लिये अग्रसर होते जाते हो।

तुम आरम्भ में ही अपनी भूलों कमजोरियों को क्षमा न करो, किसी कर्तव्य कर्म को आगे दिन पर कभी न टालो क्योंकि यह तो अपशकुन है। तुम आरम्भ ही से अपनी त्रुटियों, निर्बलताओं, कुसंस्कारों का, अहंकारमय जीवन की लालसाओं का सामना करोगे तो निःसन्देह विजयी जीवन प्राप्त करोगे। यह सन्तों की बहुत ही मूलयवान बात है, खूब समझ लो यदि तुम अपने अन्तर असत्य–समर्थक अहं बुद्धि का लालन–पालन करोगे तो इससे तुम्हारी ही हानि होगी। अतः अपने दोषों को बाहर करो। आरम्भ से ही कहीं न देखो, आरम्भ से ही इन्हें निकाल बाहर करो। आरम्भ ही से शुद्ध भावानुसार सद्कर्मों द्वारा तुम्हारा जीवन पवित्र तेजस्वी हो सकता है। अपना आरम्भ ही सम्हालो।

ध्यान दो! परम लक्ष्य के दिव्य द्वार पर ही स्वर्णाक्षरों से लिखा हुआ है 'त्याग', यही नहीं और दूर दृष्टि दौड़ाओ, इस परम लक्ष्य के पथ में आगे बढ़े हुये पथिकों की चमकती हुई तेजोमय आकृति, प्रकृति में भी अंकित दिख रहा है– 'त्याग' और वे अपने पीछे आने वाले पथिकों को अपने सुन्दर स्वरों से मानो यही मन्त्र–गान सुना रहे हैं– 'त्याग'।

जितना ही तुम्हारे मन से इच्छाओं का क्षय होता जायेगा उतना ही तुम निराश और शोक रूपी पिशाची–पिशाच से छुटकारा पाते जाओगे, जो कि तुम्हारे सिर पर प्रायः सवार रहते हैं। जितना ही तुम अपनी इन्द्रियों को स्वेच्छाचारिता का त्याग करोगे उतना ही सत्य संसार में वैभव शक्ति के स्वामी बनोगे।

स्मरण रहे कि जब तक तुम्हारे भीतर कहीं घृणा, कहीं असन्तोष, व्यर्थ की लालसायें, कहीं विषय लोलुपता आदि भयंकर विकार भरे हैं तब तक यह सब तुम्हारी जीवन शक्ति नष्ट ही करते रहेंगे। अतः इनको खोज–खोज कर विस्मृति के सागर में डुबो दो। दोषों के विरुद्ध सद्गुणों को ही धारण करो। प्रथम तो तुम्हें सद्वासनाओं को प्रधानता देकर अपवित्र वासना का त्याग करना है, पुनः आगे चल कर सद्वासनाओं को भी त्याग देना होगा, क्योंकि वह भी बन्धनकारी होती हैं। सद्वृत्तियों द्वारा असद्वृत्तियों का त्याग करो, सद्गुणों को बढ़ाते हुए दुर्गुणों का त्याग करो। अविनाशी जीवन को जानते हुए इस विनाशी जीवन से विरक्त हो जाओ। जब तक दुर्दमनीय वासनायें, भोग लिप्सायें अपनी अतृप्त क्षुधा के कारण दरिद्रता की आकृति में जीव की संगिनी बनी हैं तब तक वहाँ भला शान्ति कैसे मिल सकती है।

तुम काम को ऊर्ध्वोन्मुख बना लो। क्रोध को भी करुणा के पेट में छोड़ दो। लोभ को उदारता से जीत लो और मोह को तो मार ही डालो। मत्सर का मस्तक काट दो, मद का मद ही निकाल दो।

कायरता को कार्य की बेड़ियों से कस दो और कृपणता को कृपा की धारा में बहा दो। कठिनता को कोमलता के रंग में रंग दो। आलस्य को स्फूर्ति की दासता में जकड़ दो। अहंकार को अकेला कर दो क्यों कि अहं आकार किसी भी उपाधि के संग दोष से ही होता है। किसी वस्तु को अपने में मिलाकर 'मैं' कहना ही अहंकार है और किसी के साथ मिलकर उसे अपनी मानना अभिमान है। विवेक दृष्टि से देखने पर धन, पुत्र, स्त्री, माता, पिता को अपना कह ही नहीं सकते वरन् सदा जिस देह के साथ तुम तद्रूपता धारण कर रहे हो उस देह को भी अपनी नहीं कह सकते तब बाहरी पदार्थों पर कैसा गर्व? अतः अहं को ही अकेला कर दो, फिर आगे बढ़ कर सत् चिद्रूप आत्मा के साथ इस अहं को मिला दो।

अपने पथ में ऐसे भावों को भूल कर भी मन में स्थान न दो जिनसे तुम्हारा अहित होता रहा हो या होने की सम्भावना हों सांसारिक प्यार और प्रेम को असार समझ कर प्राणहीन बना कर छोड़ दो। स्वर्ग को स्वप्नवत भूल जाओ, तुम सत्य परमात्मा के प्रेमी बनो।

जिस प्रकार दुर्व्यवहार से अशान्ति बढ़ती है, दुर्बलता आती है उसी प्रकार सद्व्यवहार से पवित्रता और सबलता प्राप्त होती है।

तुम विवेक द्वारा दूसरों को अपनी ही तरह योग्यतानुसार अधिकार दो लेकिन किसी के अधिकार को न छीनो। अपने व्यवहार से घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, दर्प, छिन्द्रान्वेषण निकाल दो। निर्दोष नेत्रों से ही

संसार को देखो। इस दृष्टिकोण से अनुचित पश्चाताप एवं ग्लानि तथा शोक का नाश होगा। सात्विक प्रसन्नता प्राप्त होगी।

सद्व्यवहार चरितार्थ करने के लिये अपने ऊपर कड़ी दृष्टि रखनी पड़ती है, अपने प्रत्यंगों पर स्वाधिकार रखना होता है, अपनी झूठी प्रशंसा तथा निन्दा में सम रहना होता है। सद्व्यहार के द्वारा सदा मस्तिष्क शान्त रहता है, बुद्धिमत्ता का विकास होता है। पशु बल द्वारा किसी पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा, नम्रता, सहनशीलता, दया, क्षमा चरितार्थ करना सद्व्यवहार है। जहाँ तक हो समके दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप न करते हुये सहायता देने को सदा तैयार रहना चाहिये यह–सद्व्यवहार है। किसी दूसरे की वस्तुओं का लालची न बनना चाहिये वरन् अपने अधिकार की वस्तुओं द्वारा सत्य धर्म सम्मत सेवायें करते रहना चाहिये। दूसरों की सेवाओं के लिये जो कोई जितना ही आत्मोत्सर्ग कर सकता है उतना ही उसमें शक्ति का विकास होता है। मानव हृदय की विशालता सद्व्यवहारों द्वारा ही प्रगट होती है। और अन्तरात्मा की सर्वोत्कृष्ट शक्तियाँ विकसित होती है।

उन्नति की ओर बढ़ने पर सबसे पहली मन्जिल जन–सेवा है इसी से सद्गुणों का विकास होता है। स्वार्थी संसार जो तमाम कलह, दु:खान्धकार से घिरा है, उसके बीच में ऐसा मनुष्य–जिसका हृदय जन–सेवा भाव से भरा है एक प्रकाश पुंज की तरह चमकता है, ऊपर से वह दैवी शक्तियों का कृपा पात्र बनता है। तुम विचार कर देखो

अपने व्यवहारों द्वारा भलाई का प्रकाश फैलाते हो या बुराई का काला जाल बिछाते हो। तुम अपना भविष्य वर्तमान के सद्व्यवहारों से सुधार सकते हो। यदि वर्तमान की छोटी–छोटी त्रुटियों को क्षमा कर दोगे तो वही विस्तार को प्राप्त होकर तुम्हारे जीवन के बहुत बड़े भाग को दुःखान्धकार से ढक लेंगी। यह भी ध्यान रक्खो आस पास की वस्तुओं का छोड़ना ही वास्तविक त्याग नहीं है वरन् अहंकार, आसक्ति ममता को छोड़ना ही त्याग है। तुम कभी बीती बातों पर पश्चाताप न करो, बल्कि वर्तमान समय की बातों को सुधारने में तत्पर रहो, यहीं सद्व्यवहार की शरण लेनी होगी।

यदि तुम व्यवहार में अहेतुकी उदारता, असीम दया और निष्काम प्रेम को चरितार्थ न कर सको तो चाहे तुम्हें सब धर्मग्रन्थ कण्ठस्थ हों, तुम तत्व ज्ञानी ही क्यों न माने जाते हो परन्तु सब व्यर्थ ही होगा, क्योंकि जैसा कर्म करोगे वैसा फल तुम्हीं को भोगना ही पड़ेगा। यह भी याद रक्खो तुम किसी पापी कुकर्मी दुर्व्यसनों को देखकर घृणा न करो। उसका उपहास न करो। किसी को प्रत्यक्ष पाप, कुकर्म करते देखकर भी गर्वित होकर उसकी हँसी न उड़ाओ वरन् उसे प्रेमभाव की युक्तिपूर्वक बुराइयों से बचाने की चेष्टा करो। यदि तुम्हें दण्ड देने का अधिकार हो तो उसके हित के लिये प्रेम पूर्वक दण्ड दो या फिर अधिकारी न्यायाधीश से दण्ड दिलाओ।

अपनी और दूसरों की बुराई सुनकर तुरन्त विश्वास न करो और न किसी से स्वयं कहते फिरो कि हमने यह सुना, वह सुना, न अपना

अनुमान ही प्रकट करो। यदि आप दया चाहते हो तो दयावान बनिये, क्षमा चाहते हो तो दूसरों को आप भी क्षमा कीजिये। दूसरों से आप जो कुछ चाहते हैं दूसरों को भी वही दीजिये। तुम जितनी ही अधिक नम्रता धारण करोगे, उपाधिगत अभिमान का जहाँ तक बहिष्कार कर दोगे उतनी ही तुममें गम्भीरता, शान्ति, बुद्धिमानी, दूरदर्शिता बढ़ेगी।

तुम परमात्मा अथवा गुरुदेव पर विश्वास रखते हुये किसी अन्य मनुष्य से आशा न रक्खो। किसी भी सांसारिक सम्बन्धों एवं ऐहिक पदार्थों में अपना आनन्द निर्भर न करो। सत्य पथ पर चलते हुये संसार के सामने, किसी की छोटी सी छोटी सेवायें करने में लज्जा न करो क्योंकि इस प्रकार की लज्जा अभिमान है।

यह भी याद रक्खो कि दूसरों के दोषों तथा भूलों से होने वाली अपनी हानि को शान्ति और गम्भीरता से सहन करो। यही अवसर है कि तुममें सहनशीलता का अभ्यास दृढ़ हो जायेगा। यह भी देखो कि तुममें कितने ही ऐसे दोष निकलेंगे कि जिनसे दूसरों को भी दुःख सहना पड़ता है। जब तुम अपनी स्वेच्छानुसार अपने का चला नहीं पाते तो दूसरों को अपनी इच्छानुसार बन जाने का क्यों अधिकार जताते हो? तुम दूसरों को आधीनता में रखकर स्वाधिपत्य भोग के लिए लोलुप क्यों होते हो। तुम इसे अपराध समझो।

जब तक तुम भोग वासना तथा सुख के प्रलोभन से विचलित होते हो तब तक तुम्हारी परमार्थ लाभ की ओर उन्नति नहीं हो

सकती। यदि तुम किसी निश्चित पवित्र संकल्प पर स्थिर नहीं रह पाते और किसी भी लिये हुए व्रत को भंग कर देते हो, फिर भी तुम्हें अपनी महत्ता का गर्व होता है तो तुम दैवी शक्तियों के अयोग्य हो। ऐसी दशा में तुम नम्र, निरभिमानी बनो। सदा मृत्यु को सामने देखकर सद्व्यवहार, सदाचार में, शक्ति–समय सार्थक करते रहो। दूसरों का जो व्यवहार तुम्हें पसन्द नहीं आता और जो तुम्हें धर्म विरुद्ध जँचता है, उसे तुम स्वय किसी रूप में भी, किसी भी बहाने से दूसरों के साथ व्योह्रत न करो। वही व्यवहार दूसरों के साथ बर्तो जो तुम स्वयं दूसरों से चाहते हो।

व्यवहार के बीच यदि दूसरे लोग तुम्हारी निन्दा करें तो भी तुम उसका बदला न दो। यह तो तुम्हें नम्रता गुण पुष्ट करने का एक सुअवसर समझना चाहिये। इस प्रकार की निन्दा ही तो तुम्हें नम्र बनाती है। नम्रता सरलता से सुभूषित होने से तुम्हारा सौन्दर्य बढ़ता है। तुम्हारे अन्तःकरण में यदि किसी दुर्गुण की क्रिया दीखती है तो अवश्य ही तुमने कहीं न कहीं उसे स्थान दे रक्खा है।

यह भी स्मरण रहे कि कोई भी निष्काम सेवा यदि तुम प्रगट कर दोगे तो तुरन्त वह सकाम हो जायेगी। किसी के प्रति कुछ भी उपकार करो लेकिन कहो नहीं। न बदला चाहो। बदला चाहना, प्रगट करना, प्रशंसा से प्रसन्न होना अहंकारी प्रकृति का लक्षण है। तुमको अपने व्यवहार में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। यदि कोई ऐसा अधिकारी प्रेम–पात्र तुम्हारे सामने हो, जो तुम्हें दुखा–दुखा के

धन बरबाद करता हो तो समझ लो कि यह पूर्व का ऋण चुका रहा है। यदि कोई सम्बन्धी निकट नाते से हार्दिक स्नेह का स्वभावतः अधिकार लेकर सेवा सहानुभूति के विरुद्ध शत्रु का सा बर्ताव करता है तो समझ लो कि वही जीव है, जिसके साथ कभी तुमने अनीति बर्ती है, उसी दुर्व्यवहार का यह प्रतिफल है। यदि कोई ऐसा मिले जो तुम्हारे निकटस्थ प्रेम पात्र बन कर अपने रूप, सौन्दर्य एवं सद्‌गुणों से तुम्हें मोहित करे और अचानक ही सम्बन्ध विच्छेद हो जाय तो समझ लो यह भी पूर्व अदृष्ट कर्म का भोग है। करणीय कर्तव्य के उल्लंघन का इसी प्रकार फल भोगना पड़ता है।

यदि तुम्हें ऐसे सम्बन्धी मिले हैं जो सभी प्रकार की सुन्दर सेवाओं द्वारा तुम्हें सन्तुष्ट कर रहे हों तो समझ लो ये वही सम्बन्धी हैं, जिनको सभी प्रकार से, सद्‌व्यवहारों द्वारा तुमने कभी सन्तुष्ट, सुखी किया है, वे उसी प्रकार की सेवा से इस रूप में बदला दे रहे हैं। इस प्रकार की परिस्थितियों से यही शिक्षा मिलती है कि सभी के साथ सरलता, विनम्रता, निष्काम सेवा एवं निश्छल शुद्ध प्रेम का बर्ताव करना चाहिये।

जब तुम दूसरों के हित के लिये, दूसरों के लाभ के लिये अपने सुख की एवं लाभ की चिन्ता छोड़ देते हो तभी अधिकाधिक पुण्य बल एकत्रित होता है, शुद्ध सतोगुण का विकास होता है, इसी से शुद्ध प्रज्ञा का उदय होता है और तभी परमानन्दमय परमात्म तत्व का बोध होता है। दूसरों को तुम सदा ही प्रेम, दया एवं क्षमा की दृष्टि से

देखो लेकिन अपने ऊपर संयम की कड़ी दृष्टि रक्खो, तभी तुम पुण्यवान बनोगे। यह स्मरण रहे कि जो पुण्यात्मा है वही वयोवृद्ध हैं और जो पापी हैं वही अज्ञानी होने के कारण अभी बालक हैं।

तुम बीते हुये दुःखों का स्मरण कभी न करो क्योंकि यह एक मानसिक दुर्बलता है। इस बात को कभी भी न भूलो कि किसी से बदला लेने की इच्छा मानसिक आत्मघात है। तुम अपने व्यवहारों में यदि ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, कपट आदि दुर्गुण कभी नहीं आने देते तो यही तुम्हारा सौभाग्य है। यही हृदय की विशालता है। परन्तु जब तुम बुराई का बदला बुराई से ही देने को तत्पर हो जाते हो तब तुम सात्विक शरीर को, सौन्दर्य को अपवित्र एवं विषाक्त बना डालते हो।

अन्धकार में भटकते हुये अज्ञानी को ही साहनुभूति की, दया की, आवश्यकता है क्योंकि अज्ञानी ही सभी प्रकार से दुःखी है और अज्ञान के कारण ही वह पापी हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में आबद्ध प्राणियों से कहीं भी घृणा एवं–तिरस्कार न करना चाहिए वरन् उनके साथ प्रेम, अनुकम्पा सहानुभूति सांत्वना आदि सद्भावों से व्यवहार करना चाहिये, इसी पद्धति से वे अन्धकार से प्रकाश में आ सकेंगे। उनके सुधार के लिए जो दण्ड का विधान है वह भी प्रेमपूर्ण है। तुम संसार के व्यवहार को ही शुद्ध करो इसी से तुम स्वयं ही एक अनुकरणीय सद्पात्र बन जाओगे। तब तुम से कोई पाप, अपराध न होगा तब तुम्हारे साथ स्थायी हर्ष होगा।

तुम पापियों के बीच में पवित्र हो सकते हो, भोगियों, लोभियों के बीच में संयमी उदार बन सकते हो। तुम दुनिया को शुद्ध होने, धर्मात्मा हो जाने की बाट न देखो। अपने को पाप रहित, पवित्र बना लो।

यदि सताये जाने पर भी तुम मौन रहो तो तुम्हारी रक्षा दैवी शक्तियाँ करेंगी, परन्तु वाणी से चुप होना ही मौन नहीं है, सच्चा मौन है मन का शान्त होना। इसी मन के मौन को धारण करो। जहाँ तक तुम अपनी जिह्वा पर अधिकार स्थापित कर लोगे वहीं तक तुम्हारी बुद्धिमत्ता की परिवृद्धि होगी और इसके बल पर ही तुम अपने मस्तिष्क पर भी अधिकार प्राप्त कर लोगे जो महानता का ही परमगुण है। तुम्हारी बुद्धिमानी तभी है जब किसी अचनाक आए हुये संकट से घबरा न जाओ, बल्कि सन्तोष पूर्वक शान्ति–काल तक धैर्य रूपी चट्टान पर खड़े रहो। दुःखों की आँधी कुछ ही देर में स्वतः शान्त हो जायेगी। सद्व्यवहार की दृढ़ता ही तो शक्ति सम्पन्न जीवन है।

अपने कल्याण के समर्थ प्रभु से प्रार्थना करते रहो। महत्वाकांक्षा एवं सत्य अभिलाषा का प्रबल होना सच्ची प्रार्थना है। आकांक्षा अभिलाषा को प्रभु में समर्पण करना ही उपासना है और उपासना पूर्ण होने पर स्वानुभव का गान करना ही सच्ची स्तुति है। अब आगे जो कुछ भी जानना बाकी है उसे तुम वस्तुतः सद्गुरुदेव से ही जान सकोगे। अतः सद्गुरुदेव की दिव्य वाणी को सुनो, इन्हीं का आश्रय लो और जब तक कुछ भी चाह है तब तक परमेश्वर का ही अनन्य

भाव से अवलम्ब लो, अन्यत्र कहीं भी दृष्टि न डालो यही एक सबका परमाश्रय है। परमात्मा का ही सतत् चिन्तन, स्मरण, ध्यान करते रहो। चिन्तन ध्यान की महिमा का फल तो तुम्हारे आगे प्रत्यक्ष ही है। जो जिसका चिन्तन, ध्यान करता है वह उसी को प्राप्त होता है। उसी की सन्निकटता में तुम अपने को घिरा पाओगे जिसका चिन्तन करते रहे हो। प्राणी अपने अपने अभिलषित (मन चाहे) पदार्थों का चिन्तन ध्यान करते हैं उसी में उनकी बुद्धि स्थिर होती है और उसी को वे कभी न कभी पाते ही हैं। अतः तुम परमानन्द परमात्मा का ही निरन्तर स्मरण चिन्तन करते हुये अपने कर्तव्य पालन में दृढ़ रहो।

मनुष्य का मन सदा ऐसा आश्रय चाहता है जिससे चित्त को शान्ति मिले। पहले तो स्थूल दृष्टि से जगत के दृश्य पदार्थों में ही वह विश्राम पाने की आशा से कहाँ कहाँ शरण लेता है लेकिन हर जगह से कभी न कभी उसे निराश्रित होना पड़ता है। अन्त में स्थूल जगत से ऊपर उठकर सत्य धर्म का आश्रय लेने पर त्याग के द्वारा ही शान्ति मिलती है।

यह सत्य बात है कि तुम सत्य की खोज के पहले ही अपनी आँखों से रंगीन चश्मा उतार डालो। प्रायः तुम निष्पक्ष होने पर देख सकोगे कि तुम्हारा मन तमाम प्रकार स्मृतियों का भण्डार बन रहा है और समाज के व्यक्तिगत भाव एवं अनेकों धर्मों ने तुम्हें आच्छादित कर लिया है ऐसी दशा में तुम इस ज्ञान प्रकाश में आकर सामाजिक व्यवहारों का संशोधन करो। इसका यही अर्थ है कि समाज के अन्दर

व्यक्तिगत स्वार्थों से सनी हुई कुरीतियों का बहिष्कार करते हुये सत्य सिद्धान्तों को प्रकाश में लाओ यही तो पूर्णता के विकास का पथ है। पूर्णता की प्राप्ति भविष्य काल में निर्भर नहीं; वरन् वर्तमान क्षणों में है; सद्व्यवहार से समता का भाव दृढ़ होता है।

अब तुम यह भी स्पष्ट देखो कि किसी भी वस्तु के वास्तविक रूप को न जानकर ही तुम उनके लिए तरसते थे; उन्हीं के लिए रोया करते थे, पर अब ज्ञान प्रकाश द्वारा तुम्हें हर एक वस्तु के रूप का पता रहेगा।

यह भी समझ लेने की बात है– जैसे तुम हो वैसा ही तुम्हारा संसार भी है। तुम्हारी दृष्टि के अनुसार ही यह जगत तुम्हें भाता है।

अपनी उन्नति के लिए केवल सद्भावना से ही काम न चलेगा वरन् प्रत्येक सद्भावना को व्यवहार रूप में चरितार्थ करना होगा। तुम्हें पूर्णतः प्राप्त करना है और उसका साधन यही है कि मन पर संयम, पवित्रता रक्खो। निर्दोष जीवन बनाओ। सत्य योग की प्राप्ति के लिए तुम्हारे पास आज समय शक्ति बहुत ही सीमित है– अतः उसका अपव्यय न करो। तुम सब अपने सत्य लक्ष्य को भूल जाते हो तभी तुम्हारा जीवन अनिश्चित दीन, दुर्बल हो जाता है। तुम अपने आप का नियंत्रण करने में जितना ही असावधान रहोगे उतना ही सत्य से दूर हटते जाओगे और जितना ही पूर्ण नियंत्रण में सफल होगे उतना ही सत्य के निकटस्थ होते जाओगे।

अपनी इस पवित्र यात्रा में किसी भी प्रकार की कठिनाइयों के आने पर धैर्य, सन्तोष, सहनशीलता को कभी न छोड़ो वरन् इन्हीं सद्गुण बल से उनका सामना करो। इसी से तुममें चारित्रय बल बढ़ेगा, गम्भीरता आदि सद्गुणों का अधिकाधिक विकास होगा। ध्यान रक्खो इन्द्रिय तथा मनोसंयम में ही तुम्हारी बुद्धिमत्ता तेजोमय रूप धारण करती है और इसी प्रकार की बुद्धिमत्ता में बल और शान्ति का निवास होता है। तुम अपने अनुचर न बनो, वरन् स्वामी बनो, निरन्तर अपनी अहंगत रुचियों और कामनाओं का शमन करते रहो।

तुम एक एक वर्ष में यदि एक सद्गुण चरितार्थ करते हुए दृढ़ कर लो और एक दुर्गुण दूर कर दो तो कुछ ही दिन में तुम एक आदर्श महात्मा बन जाओगे। तुम अपने अन्तर की हर एक बुराई का, अधम वृत्ति का त्याग करो। जब तक तुम इनके लिये असावधान रहोगे तब तक नाना प्रकार की कठिनाईयाँ तुम्हें दुःख देती रहेंगी। प्रारब्धवश आने वाली विपत्तियों से तुम कहीं न घबराओ यह तो तुम्हें नम्र बनाने में बहुत ही सहायक हैं। किसी कठिनाई से घबरा जाना निरर्थक ही नहीं बल्कि शक्ति का अपव्यय है।

बुद्धिमान जिज्ञासुओं! तुमने जो कुछ अभी ज्ञान प्राप्त किया है उसे पूर्ण न समझ लेना। सत्य अनन्त है, उसे जहाँ तक जान सको वहाँ तक अपनी जिज्ञासा को कहीं शिथिल न होने दो। तुम ज्ञान का गर्व न करो क्योंकि ज्ञान का गर्व ही अज्ञान की सीमा में तुम्हें बाँध देगा।

अपने मन से बहुत ही सावधान रहो। कभी–कभी यह मन महत्वकांक्षा के लोभवश उत्कृष्ट तप का संकल्प करता है, सर्वस्य त्यागी का वेष बना लेता है, परन्तु अनेकों बार मन के त्याग, तप का आवेश नशे की भांति चढ़ते और उतरते देखा गया है। इसीलिये जो कुछ करो उसके विषय में दूरदर्शी ज्ञान वृद्ध पुरुषों से सम्मति ले लो।

मन को निर्बल बनाने का उपाय यही है कि इसकी कामना पूर्ण न की जाय। जितने अन्न तथा वस्त्र से शरीर की रक्षा होती रहे उतने की पूर्ति करते हुए अन्य किसी भी सुखद विषयोपभोग का अवसर न दिया जाय। चाहे वह स्वादिष्ट भोजन हो, या मनोहर शब्द हो, स्पर्श हो, या गन्ध हो, अथवा सुन्दर रूप को देखने की कामना हो–यह सब मन को पुष्ट करने वाले भोग हैं।

तुम अपनी ही शक्ति से मन को सबल बनाकर स्वयं उसके सामने अपने को शक्तिहीन सा अनुभव करते हो। अतः मन की इच्छाओं का सावधान रहकर अध्ययन करो, क्योंकि मन की प्रबल चाह ही परमदानी आत्मा के आगे प्रार्थना बन जाती है और जो कोई भी चाह प्रबल होती है, आत्मा की सत्ता द्वारा उसी की पूर्ति होती है।

जीवन का अध्ययन करते हुए यह भी ज्ञात हो सका कि प्रायः मनुष्य बुद्धियुक्त न रहकर मनःसक्त होकर ही रहता है। इसीलिये जीवन की गति विचारयुक्त न होकर मन के संस्कारानुसार होती है, इसी कारण से हम लोग जो कुछ बुद्धिपूर्वक तप, त्याग करने का

संकल्प करते हैं उसे पूरा नहीं कर पाते और भोगजनित सुखों कें राग में विचलित हो जाते हैं।

स्वाध्याय–नियम के अनुसार हमने अपने जीवन की और दूसरों के जीवन की गतिविधि को पढ़–पढ़ कर यही समझा है कि सहस्त्रों श्रद्धालु विचारवान होते हुए भी अपने सुखासक्त मन से बहुत धोखा खा रहे हैं और बार–बार एक ही प्रकार की भूल करते हुए दुःख भोगते हुए जीवन बिता रहे हैं।

सत्संग प्रेमियों में कौन व्यक्ति ऐसा है–जिसकी समझ में यह न आ गया हो कि ''संसार के सारे सम्बन्ध मन के ही माने हुए हैं, इसी प्रकार संसार के पदार्थों में जो सुख प्रतीत होता है वह भी मन का ही माना हुआ है, तमाम दुःख, सुखासक्ति के ही कारण होते हैं, सम्बन्धित शरीरों को अपना मानकर मनुष्य मोहित होता है और वियोग होने पर केवल मोहवश ही दुःखित होता है।'' यह सब समझते हुए भी कितने ऐसे व्यक्ति हैं, जो मोह, लोभ, ममता, अभिमान का त्याग कर रहे हैं।

बुद्धि के दोषों को जानते हुए भी जो सज्जन दोषों, विकारों का त्याग नहीं कर पाते उन्हीं से यह कहा जा रहा है कि तुम अपने भोगासक्ति, सुखासक्ति से धोखा खा रहे हो। तुम्हीं उसे सन्तों तथा शास्त्रों के चतुष्ठय साधन वाली बात को बार बार दुहराना पड़ रहा है–इसलिये, कि विवेक, वैराग्ञ, षट–सम्पत्ति और मुमुक्षुता के पूर्ण योग बिना तुम्हें परम शान्ति अथवा सत्यानन्द की प्राप्ति हो नहीं सकती।

मैं देखता हूँ कि मेरे इस सत्य सन्देश को सुनने पढ़ने वाले आप लोग कोई युवक हैं, कोई युवती हैं, कोई पति हैं, कोई पत्नी हैं, कोई माता–पिता हैं, कोई प्रेमिका हैं, कोई स्वामी हैं, कोई सेवक, सेविका हैं। आप जो कुछ अपने को एक दूसरे के समक्ष मानते हैं, जो कुछ बनते और बनाते हैं, मैं आप ही से कह रहा हूँ कि इस सत्य को स्मरण रखिये–प्रत्येक संयोग में किसी दिन वियोग अवश्य होगा, इसलिये, किसी भी सम्बन्धी में निर्भर होकर न रहिये। संयोग, वियोग, लाभ, हानि जन्म, मृत्यु, प्रारब्ध में निश्चित समझ कर कहीं भी भयातुर न होइये। जो कुछ होना उचित है वही होगां अपने या दूसरों के शरीरों में आसक्त होकर न रहिये वरन् चिद्रूप अविनाशी आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर उसी के पूर्ण प्रेमी होकर अपने दुःखों का, बन्धनों का अन्त कर दीजिये।

स्वाध्याय अर्थात् अपने अन्तःकरण के व्यापार को पढ़ते हुए बहुत दूर तक तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि अपने परम हित की बातें सुनते, समझते हुए भी प्रायः ऐसा कुछ नहीं कर पा रहे हो जिससे तुम दुःख बन्धनों से मुक्त हो सको।

मैं ऐसे अनेकों व्यक्तियों को जानता हूँ उनमें स्त्री, पुरुष दोनों ही हैं, वे मेरे सामने आत्म कल्याण का, दुःख निवृत्ति का, स्वतन्त्र, स्वाधीन होने का प्रश्न हल करते हैं, वे यहाँ निश्चय करते हैं कि 'हमे अब किसी वस्तु का लोभ नहीं करना चाहिये' किसी व्यक्ति से अपने सुख के लिए मोह नहीं करना चाहिए, किसी के संयोग का अभिमान

नहीं करना चाहिये, ऐसा निश्चय करने वाले व्यक्ति ही जब कुछ रुपयों को अपने अधिकार में आते हुए देख कर हर्ष से उछल पड़ते हैं, जब वे कुछ वस्त्रों तथा आभूषणों से अपने को सजा देखकर अभावग्रस्तों के आगे अभिमान से प्रफुल्लित हो उठते हैं, जब वे सोचते हैं कि इतना रुपया मेरे पास एकत्रित हो जाय तो इस बार इससे भी अच्छा वस्त्र व साड़ी लेनी है, अमुक आभूषण के बिना तो मेरा सभी श्रृंगार सूना है, इस प्रकार की जो विविध कल्पना के चित्र गढ़ते रहते हैं, वे नहीं जानते कि अपने मन में कितना लोभ तथा अभिमान परिपुष्ट कर रहे हैं।

मैं उन व्यक्तियों का भी अध्ययन कर रहा हूँ जिन्होंने एक दिन अवकाश होने के कारण अपने हित के लिये यही निश्चय किया था कि प्रारब्धवश किसी जीवात्मा से पति रूप में या पत्नी रूप में या पुत्र रूप में सम्बन्ध भले ही हो जाये परन्तु हमें शरीरों को अपना मानकर मोहवश आसक्त नहीं होना है, अपने कर्तव्य–कर्मों को निष्काम भाव से पूर्ण करते हुए सबसे विरक्त रहना है–ऐसा कहने वाले व्यक्तियों को ही मैंने देखा है कि किस प्रकार धीरे धीरे विवेक को भूलकर मोहवश संगाभिमान से अपने को बाँधते चले जा रहे हैं किन्तु फिर भी उन्हें अपने बन्धन का और अन्त में दुःखद परिणाम का ध्यान नहीं आ रहा है।

प्रारब्धानुसार ही एक जीवात्मा का दूसरे जीवात्मा से सम्बन्ध होता है उसी के प्रति अपनत्व का भाव दृढ़ होता है, पारस्परिक

संयोग होने पर जितना ही अधिक रूप–दर्शन में, शब्द श्रवण में एवं स्पर्शादि में सुख का अनुभव होता है उतना ही अधिक मन उसी का मनन करता है, चित्त में उसी का चिन्तन होता रहता है। मनन चिन्तन की प्रगाढ़ता के अनुसार ही मोह, ममता, आसक्ति प्रबल होती जाती है इसी में जीवन डूब जाता है, शान्ति एवं परमानन्द, भगवद्–भक्ति अथवा जीवन–मुक्ति ऐसे व्यक्ति के लिये एक स्वप्न की निधि बन जाती है। फिर कभी भयंकर दुःखाघात से अपनी दुर्दशा का ज्ञान होता है तब पुनः कल्याण का प्रश्न उठता है, बन्धन से मुक्ति पाने की अभिलाषा प्रबल होती है।

बुद्धिमान जिज्ञासुओं! यदि तुम बन्धनों से दुःखों से छूटना चाहते हो तो सावधान होकर अपने जीवन की गति का अध्ययन करो। अपने सम्बन्धियों के संयोग में रस भले ही ले लो परन्तु विवेकपूर्वक उस सुख की सीमा को देखो। प्रत्येक सुख में तैरना सीखो। डूब कर अन्धे न बनो। ध्यान देकर समझो! तुम जब किसी के संयोग में सुख का अनुभव करते हो और उसे सुखदाता मानने लगते हो तब तुम सत्य को भूल कर मोहभ्रमित हो जाते हो। यह स्मरण रखने योग्य बात है कि तुम्हें दूसरा कोई न सुख देता है न दुःख। तुम स्वयं ही किसी वियोग में चाहे जितना दुःख मानते रहो यह सब तुम्हारी ही मान्यता पर निर्भर है। तुम जिसे भी अपना मान लेते हो उसके प्रत्यंगों की है, तुम उसकी प्रत्येक चेष्टा तथा, हाव–भाव का, मनन करते हो; उसके द्वारा होने वाले सेवा सत्कार का बहुत अधिक मूल्य बढ़ाते रहते हो

इसी पद्धति के पथ से तुम मोहबद्ध होते जाते हो। जब तुम एक छोटे से बालक को अपना पुत्र मानते हो, उसकी तोतली भाषा से निकलते शब्दों को सुनने में तुम्हें बहुत ही रस आता है। उसकी हँसी, उसकी बातें बताते हुए तुम्हें बहुत ही रस आता है परन्तु उस समय तुम नहीं समझ पा रहे हो कि कितनी गुप्त गति से पुत्र के प्रति अपनत्व की भावना दृढ़ होती जा रही है, मोह प्रबल होता जा रहा है, तुम्हारा जीवन सत्यात्मा से विमुख होकर अनात्म पदार्थों में आसक्त होकर डूबता जा रहा है। अध्ययन करते हुए अपने अन्तःकरण में सत्य अर्थ को समझो,—यह पत्नी तथा पति, पुत्र तथा माता, पिता सदा तुमसे दूर हैं और सदा दूर ही रहेंगे, यह न तुम्हें सुख दे सकते हैं न दुःख दे सकते हैं परन्तु आँखों की राह से, कानों की राह से घुसे हुए, तुम्हारे भीतर सम्बन्धियों के रूप तथा शब्द ही तुम्हें सुख एवं कभी दुःखदाई हो सकते हैं।

यदि अपना हित चाहते हो तो दूरदर्शी बनो किसी भी व्यक्ति या वस्तु के आगे आत्मा अथवा परमात्मा का मूल्य महत्व न घटाओ। मन को सत्य आत्मा के निकट रक्खो, किसी वस्तु तथा व्यक्ति के भक्त न बनो अनुरक्त न बनो ऐसा तभी हो सकेगा जब तुम अपने सम्बन्धियों की भावानुसार सेवा सत्कार करते रहो किन्तु अपने लिये किसी से भी कुछ न चाहो। दूसरों को सुखी कर सको तो अवश्य करो परन्तु दूसरों से अपने सुख की चाह न रक्खो तभी तुम मोह से, आसक्ति के बन्धन से अपने को बचा सकोगे।

बुद्धिमान सज्जनों! देखो! यह सत्य संदेश सबके कानों तक नहीं पहुँच सकता, हजारों मनुष्यों में कोई एक व्यक्ति सत्य को जानने की इच्छा करता है। लाखों करोड़ों के बीच में बहुत थोड़े मनुष्य ऐसे निकलेंगे जो आत्म कल्याण की, दुःख निवृत्ति की, परम शान्ति की अभिलाषा रखते हैं, वही इस संदेश को सुनने, समझने के अधिकारी हैं। यदि तुम्हारी बुद्धि में सद्–असद् विवेचन की शक्ति आ गई है, तुम्हारे हृदय में ज्ञानी महापुरुषों के प्रति श्रद्धा जाग्रत हो चुकी है तो तुम्हारा परम सौभाग्य, तब इतनी दूर आगे बढ़ के आलस्य प्रमाद में जीवन का समय नष्ट न करो, जिस प्रकार से हो सके दैवी सम्पत्ति को अपने से अधिक पुष्ट करो। जब तुम्हें प्रारब्धानुसार संसार में रहना ही पड़ेगा तब संसार में रहने की युक्ति अथवा ऐसा विवेक प्राप्त करो जिससे कि तुम मोहपाश में न बंधों और दुःख रूपी दण्ड न भोगो।

यदि तुममे बौद्धिक योग्यता है तो अवश्य ही तुम विवेक, वैराग्य षट–सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, श्रद्धा, समाधान और मुमुक्षुता)– इन साधनों को जीवन में धारण करोगे। इन्हीं साधनों को सर्वोपरि हितकारी समझोगे, क्योंकि इन्हीं के द्वारा अज्ञान अन्धकार से, पाप–ताप से मोह व्याधि से और भोग–रोग के बन्धन से छूट सकोगे।

यह भी समझ लो, विवेक वैराग्य आदि चतुष्टय साधन के बिना तुम केवल जप, कीर्तन, पाठ, पूजा, तीर्थयात्रा करते हुए अभिमानी भले ही बन जाओ परन्तु परमतत्व के ज्ञानी अथवा योगी न हो सकोगे।

जप, तप, व्रत, कीर्तन, पाठ पूजा का समुचित लाभ उन्हीं साधकों को मिलता है जो विवेक वैराज्ञ आदि चतुष्टय साधन सम्पन्न होते हैं।

अविवेकी, रागी, असंयमी, विषयासक्त, असहिष्णु, अश्रद्धालु, संशय चित्त वाले प्रपंचबद्ध मनुष्य भी स्वार्थ सुख की सिद्धि के लिये जप–कीर्तन पूजा पाठ व्रतादि करते हुए देखे जाते हैं। परन्तु ऐसे व्यक्तियों को शान्ति नहीं प्राप्त होती। विवेक, वैराग्य की कमी रहने तक तुम स्वयं अपने को ही पढ़ कर इस सत्य का अनुभव कर सकते हो कि तुम्हें भी शान्ति क्यों नहीं मिली? केवल इसीलिये– कि चतुष्टय साधन सम्पन्न होने में त्रुटियाँ हैं।

इस समय अपने जीवन की गतिविधि का अध्ययन कर ही रहे हो तो गम्भीरतापूर्वक देखो–अधिक से अधिक दुःख की प्रतीति तभी होती है जब इच्छायें अधिक उत्पन्न होती हैं किन्तु उनकी पूर्ति नहीं होती। इस वाक्य को मंत्र की भांति याद कर लो कि इच्छाओं की उत्पत्ति से दुःख का आरम्भ होता है और पूर्ति न होने से वह बढ़ता ही जाता है। इच्छाओं की पूर्ति के लिये ही अनुकूल वस्तु या व्यक्ति का आश्रय लेना पड़ता है। उसी से राग होता है और जो कुछ प्रतिकूल दीखता है उससे द्वेष होता है। अब तुम्हारी समझ में आ गया होगा कि सुख की इच्छा ही अनेकों बन्धनों तथा दुःखों का कारण है।

यदि समझ में आ सके तो एक बात यह भी अमूल्य है कि, तुम्हारी अन्तरात्मा नित्य शाश्वत शान्ति में ही निवास करती है परन्तु अनुभव तुम्हें वाह्य सुखों की इच्छा के पथ में भटकते रहने के कारण नहीं होता है।

मैं प्रत्येक सुखाभिलाषियों से पूछता हूँ कि जब तुम्हें कोई सुख नहीं प्रतीत होता और दुःख भी नहीं होता तब ध्यान देकर देखो– क्या रहता है? तुम समझो या न समझो पर जब सुख या दुःखानुभव नहीं होता तब केवल शाश्वत शान्ति रहती है, उसका योगानुभव इच्छा तथा द्वेष की सीमा के ऊपर उठने पर हर समय हो सकता है।

तुम्हारी अन्तरात्मा शान्ति के ही वातावरण में नित्य निवास कर रही है परन्तु वहिर्मुखी अहंवृत्ति उस नित्य शान्ति से विमुख है इसीलिये उसका अनुभव नहीं होता। यह समझ लो जब तक मन निर्विषय अवस्था को प्राप्त करके निस्संकल्प होकर अन्तर्मुख नहीं होगा तब तक स्थिर ध्यान हो नहीं सकता।

यह भी अध्ययन का विषय है, जिसे तुम्हें अपने लिये समझ लेना है। देखो! सतोगुण की प्रधानता में ही चित्त एकाग्र होता है। रजोगुण प्रबल रहने तक चित्त की विक्षिप्त दशा रहती है। और तमोगुण की प्रधानता में यह मूढ़ दशा में रहता है। तमोगुण की मूढ़ शक्ति रजोगुण की अधिकता से प्रगतिशील होती है। और रजोगुण की अमर्यादित गति को सतोगुण से स्ववश करना होता हैं इस क्रम में तुम

अपनी सुप्त शक्तियों को प्रबल होने दो। इस प्रगति की सतोगुण के द्वारा संतोन्मुख बनाओ। इसके लिये तुम में सद्विवेक के साथ श्रद्धा, उत्साह, एकाग्रता, स्मृति और दीक्षा का सुयोग होना आवश्यक है। यह भी ध्यान रक्खो, जब तुम में श्रद्धा अधिक होगी बुद्धि मन्द होगी, तब तुम सारहीन बातों पर विश्वास कर बैठोगे। यदि बुद्धि प्रबल होगी, श्रद्धा मन्द रहेगी तो स्वार्थ–सिद्धि में निपुण बनोगे। इसी प्रकार यदि उत्साह प्रबल हुआ, एकाग्रता मन्द रही तो तुम्हारे चित्त में भ्रान्ति बढ़ेगी। एकाग्रता प्रबल हुई, उत्साह मन्द रहा तो तुम आलस्य अथवा तन्द्रा से घिर जाओगे। यदि स्मृति प्रबल हुई किन्तु उसके साथ शिक्षा और दीक्षा न मिली तो जीवन में सद्गति न होगी। स्मृति मन्द होने के साथ कहीं शिक्षा–दीक्षा अच्छी मिल गई तो अमर्यादित गति की प्रधानता रहेगी। इसीलिये, जिस प्रकार की शक्ति मन्द हो उसे तीव्र बनाओ और जिस क्षेत्र में अमर्यादित तीव्रता हो उसे संयम पूर्वक स्ववश करो।

अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्रगत शक्ति की गति में विधिवत नियंत्रण रखना ही साधन सम्पन्नता अथवा बौद्धिक योग्यता का परिचय है।

आनन्दमय सत्य के प्रेमियों! तुम्हें अपने प्रारब्धानुसार मिले हुए शरीर तथा सम्बन्धियों के साथ संसार में तो रहना ही है तब तुम्हारा हित इसी में है कि यहाँ रहने की उस विधि को जान लो जिसके द्वारा मोह, माया, मान के बन्धन से अपने को बचा सको और दुःख

रूपी दण्ड न भोगो। इसी के लिये उपयुक्त साधनों की आवश्यकता है। साधनों के समुचित अभ्यास से ही तुम पाप, ताप, भोग, रोग, आधि, व्याधि, उपाधि जनित कष्टों से अपने को मुक्त देख सकोगे।

सर्वप्रथम तुम सुखद वस्तुओं के आने तथा जाने में सन्तोष धारण करो। धर्मपूर्वक धनोपार्जन करो, प्राप्त सम्पत्ति की रक्षा करो और उसका सदुपयोग करो किन्तु उसे अपना मानकर लोभी न बनो। इसी प्रकार माता, पिता, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री, भाई, बहिन, आदि सम्बन्धियों के साथ रहो उनसे प्यार करो प्रेम का रसस्वाद लो किन्तु उन्हें अपना मानकर मोही न बनो। किसी समय में भी हो जाने वाले वियोग को स्मरण रक्खो और निर्भय रहो।

यदि तुम में कहीं पर निर्बलता की प्रतीति हो तो ऐसी योग्यता प्राप्त कर लो कि संसार में प्रिय सम्बन्धियों के बीच में रहते हुए, संयोग का सुखानुभव करते हुए कहीं परतन्त्र पराधीन न बनो वरन् स्वतन्त्र स्वामी होकर प्रारब्ध–पथ में विचरो।

मन में उठने वाली इच्छाओं का दमन करो, इच्छा करो ही नहीं तभी तुम निश्चिन्त निर्भय रह सकोगे अपने आस पास रहने वाले संबंधित जीवात्माओं की रुचि की पूर्ति करते रहो जहाँ तक उचित हो किन्तु किसी भी अनुचित धर्म–विरुद्ध रुचि की पूर्ति का पक्ष न लो साथ ही किसी से अपनी रुचि पूर्ति होते देख उसमें आसक्त न बनो।

अपने अनित्य जीवन के साथ–साथ चलने वाली मृत्यु को पहचाने रहो। यदि यह बातें भूलोगे तो सहस्त्रों बार रोना पड़ा है आगे भी रोना पड़ेगा। विवेक पूर्वक सब कुछ का अध्ययन करो। जो कुछ तुम्हें इस समय सर्वोपरि प्रिय हो जिसे तुम सबसे अधिक स्नेह कर रहे हो उसके सम्बन्ध विच्छेद के लिए तैयार रहो।

भाग्य चक्र की गति विलक्षण रूप से देखने में मिलती है। कहीं भरे घर उजड़ जाते हैं, कभी सूने घर भर जाते हैं। एक व्यक्ति से कितने ही व्यक्ति बढ़ जाते हैं और कहीं बहुत बड़े परिवार में सब मृत्यु को प्राप्त होते हैं, केवल एक ही व्यक्ति परिवार के सभी लोगों की मृत्यु का कटु अनुभव करने के लिये जीता रहता है।

सत्य ज्ञान के जिज्ञासुओं! सावधान होकर अपने जीवन रूपी पुस्तक को पढ़ो, यही सच्चा स्वाध्याय है, इसी से तुम्हें सत्य का ज्ञान होगां ज्ञान होने पर तुम्हें अपनी महिमा का दर्शन होगा तब भी तुम संसार में रहोगे सुखानुभव करोगे परन्तु भय चिन्ता, दुःख तुम तक पहुँच न सकेंगे।

जो कुछ तुम पढ़ रहे हो गम्भीरता पूर्वक मनन करो। अपनी दृष्टि से इतनी दूरदर्शिता प्राप्त करो कि संसार के बीच से ही सत्य को देख सको और परम शान्ति का अनुभव कर सको।

जितनी ही तुम में सरलता, पवित्रता बढ़ेगी उतना ही तुम सहनशील बनोगे। बड़े बड़े कष्टों के बीच भी प्रसन्न रहोगे। कठोर

हृदय, मलिन अन्तःकरण वाले मनुष्य सदा भय से त्रस्त अशान्त रहा करते हैं। तुम सरलता और भाव—पवित्रता के अभाव से ही क्रोधावेश में आने की भूल करते हो। तुम दूसरों के सामने जब सरल नहीं बनते तब दूसरों के द्वारा बहुत अधिक दुःख अनुभव करते हो लेकिन यह कभी ध्यान नहीं देते कि दूसरे तुम्हारे लिये कितना सहन करते हैं। तुम यदि अपने आस पास के लोगों से दुःखी हो तो यह तुम्हारे लिए शुभ है कि तुम उस स्थान से ऊँचे उठना चाहते हो। तुम्हारा चरित्र, विकास, सद्‌गुण—विकास परमार्थ की ओर प्रगति उसी स्थान से प्रारम्भ होनी चाहिये। वहीं पर तुम्हारे व्यवहारों से तुम्हारी बुद्धिमत्ता, चतुरता और अन्तर्बल का पता चलेगा।

जब तुम सद्‌व्यवहारों के द्वारा पवित्रता, सरलता की मूर्ति ही बन जाओगे, तब परमानन्द की विभूति तुम्हारे हृदय में ही निहित मिलेगी तुम में फिर कोई भोग सुखों की भूख न रहेगी। कोई व्यक्ति ऊपरी कर्मों को भले ही सुन्दर, धर्मयुक्त दिखा सकता है पर यदि भाव पवित्र न हुआ तो उन कर्मों का रूप नहीं देखा जायेगा वरन् भाव के अनुसार ही उसे फल मिलेगा। अतः तुम शुद्ध अभिप्राय से काम करो।

किसी के द्वारा अपमानित होने पर तुम्हें उतना ही दुःख होगा जितना तुम अभिमानी होगे। नम्रता, सरलता, विरक्तता के अभाव में ही दुःख होता है। अपने में सदाचार, सद्‌व्यवहार चरितार्थ होने के लिये तुम्हें सदैव पवित्र ध्यान, भक्ति और विशाल हृदय एवं उदारता का ही आदर्श रखना पड़ेगा और नियम से दैनिक ध्यानाभ्यास को दृढ़ करना

होगा। सद्व्यवहार–बल–पोषक–न्याय ही धर्म है और सरलता पवित्रता यही दोनों पैर हैं, दया परोपकार ही दोनों हाथ हैं, जिनमें सद्व्यवहार सुन्दर सुगठित होता है। देखो! तुम्हारे सद्व्यवहार के दर्शन मात्र से दूसरों में सत्यता का प्रेम का प्रभाव पड़ेगा, तुम्हें देखते ही लोग पवित्रता की प्रेरणा से भरते जायेंगे।

समुचित श्रम ही सद्व्यवहार का जीवन है और आलस्य ही मृत्युपथ है, अतः तुम सेवाओं द्वारा सहनशीलता द्वारा, सद्व्यवहार दृढ़ता का ही श्रम करो। आलस्य कहीं न आने दो। सद्व्यवहार के लिये आत्मनियंत्रण ही प्रधान साधन है, इससे ही शक्ति केन्द्रित होती है। प्रकाश तथा शक्ति के क्षेत्र में तुम अपने को बढ़ते हुए पाते हो। यदि तुम अपने आप को वश में न करो, हृदय को सरलता, परिवत्रता से न भर दो तो तुम्हारे पूजा–पाठ दुःखों को दूर न कर सकेंगे। आत्मसंयम से ही सद्‌गुणों का विकास होता है। इस प्रकार से आत्म संयम से यदि चोरी से किसी भी स्तर में स्वार्थ का अंश रह जायेगा तो प्रलोभनों के आक्रमण से तुम मुक्त नहीं हो सकते। जहाँ तक तुम अपने सामने किसी भी दृश्य, अदृश्य वस्तु का सद्–असद् विवेक द्वारा निरीक्षण करोगे उतना ही तुम अपने आगे बन्धनों की भीड़ से मुक्त होते जाओगे और यदि कल्पना द्वारा किसी क्षेत्र में अन्वेषण शुरू करो तो बंधते जाओगे। मन के यही दो स्वरूप हैं– विवेचनात्मक और कल्पनात्मक।

जहाँ तक तुम शक्ति को सद्व्यवहार में लगाते हो वहीं तक जीवन का सदुपयोग है और शक्ति को बुराई के लिए खोल देना ही विनाश के पथ पर यात्रा करना है। तुम अपने गौरव–महत्व को न चाहो वरन् परमाधार परमात्मा के प्रति भक्ति चाहो, सत्य चाहो निष्काम जीवन चाहो। जितना ही अपने ऊपर प्रभुत्व रक्खोगे उतने ही ऊपर उठोगे।

इस परम लक्ष्य की ओर बढ़ने में कहीं फिसल जाओ, गिर जाओ तो दो चार स्वांसें ले लो और फिर उठो, फिर चलो कहीं हताश होकर निर्बलता कायरता को स्थान न दो। एक बार निशाना चूक जाने पर फिर लगाओ अवश्य सफल होओगे तुम कहीं भी अपने दोषों को क्षमा करोगे तो दुःख दण्ड से किसी प्रकार नहीं बच सकते। दुःख, निर्बलता, दरिद्रता आदि अज्ञानी के ही लिए है। एकाएक उड़ कर पहुँचने की चेष्टा में व्यर्थ शक्ति अपव्यय न करो। अस्वाभाविक कष्टों को उठाकर कोरे तपस्वी न बनो, क्योंकि अज्ञानता से ज्ञान, मूर्खता से विवेक, दुर्बलता से बल, बचपन से युवावस्था धीरे ही धीरे एक निश्चित गति से सबकी पूर्णता होती है।

देखो कहीं सद्गुणों के विकास में शक्ति–तेज की सम्पन्नता में तुम्हारी निम्न प्रकृति अहंकारिणी न बन बैठे। अतः सत्य के प्रति शरणागति भाव को सदा–निष्कलंक रक्खो। जब तक परतन्त्रता है तब तक शरण लेनी ही पड़ेगी और तब तो फिर वह बुद्धिमत्ता की बात है कि उसी की शरण लो जो स्वतन्त्र हो। यह ध्यान रक्खो तुम्हारा पतन

कहाँ से प्रारम्भ होता है? पहले संस्कारवश या संग दोष के कारण मन में किसी विषय की इच्छा का हल्का सा सरल विचार उठता है फिर उसे कुछ देर स्थान दे देने से दृढ़ कल्पना आती है, उसके पश्चात् सुख का उन्माद उठता है उसी में फिसलन फिर मन की स्वीकृति होती है पुनः वही स्थूल स्तर में क्रिया स्तर में क्रिया रूप में परिणत हो जाता—यही है पतन का क्रम।

यह भी समझ लो कि मन की सभी क्रियायें वासनाओं के द्वारा भावनाओं, कामनाओं को लेकर ही होती हैं और मन की क्रिया के लिये प्राणों की क्रिया निश्चित है अतः अभ्यास में यदि प्राणों को निश्चल किया जाय तो मन भी निश्चल हो जायेगा; पर मन वाह्य जगत में निश्चल नहीं होता परन्तु उसका एक दूसरा द्वार खुलता है जो देह के भीतर ही प्राण के स्तर में गतिशील होता है और अपने अन्तर्निहित संस्कारों भावों के अनुरूप स्वप्नवत् दृश्य—दर्शन में मुग्ध होकर वहीं भ्रमण करते हुये आनन्द मानता है। इस स्थूल देह के परे सूक्ष्म शरीर है जो भुवलोक की प्रकृति से बना हुआ है, उसमें यदि मन की चेतना जाग्रत हो जाये तो वहाँ अद्भुत अलौकिक दृश्य—दर्शन हैं और दिव्य रूप हैं एवं दिव्य मनोहर शब्द ध्वनि होती रहती है। यह चंचल मन वहाँ तक जाता है परन्तु प्राण निरोध तो करना ही पड़ता है अन्य कोई सुलभ उपाय नहीं है। यह प्राण—शक्ति जो अगणित नाड़ियों में प्रवाहित रहती है उसे योगाभ्यास द्वारा ही एक ही नाड़ी में लाना ही पूर्ण एकाग्रता और योग—सिद्धि है।

इस प्राण–शक्ति–संयम के लिये अनेकों योगी प्रणायाम की साधना करते हैं। कुम्भक के द्वारा समान वायु को बलवान बनाकर एक केन्द्र नाड़ी में स्थित करते हैं; इसी में असंख्य प्राण धारायें एकत्र हो जाती हैं यही पूर्ण निरोध है। यही मनोवृत्तियाँ एक शक्ति पुंज बनकर तेज का रूप धारण करती हैं; जिसके आलोक में साधक अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेता है यही है योग सिद्धि। परन्तु ध्यान रहे कि जब तक मन पवित्र नहीं होता तब तक वह स्थायी रूप में अपने अभीष्ट लक्ष्य में स्थिर नहीं हो सकता, क्योंकि बीज रूप में मन के अन्दर छिपी हुई ऐहिक कामनायें प्रस्फुटित हो उठती हैं यही तो बन्धन है। यहीं पर सावधान रहने की आवश्यकता है।

सच्ची स्थायी शान्ति प्राप्त करने का ही उपाय है कि अपने मन पर संयम रखते हुये प्राण–इन्द्रियों की सीमा से बाहर आकर, इन निम्न स्तरों के गुण धर्म संस्कारों से अपने अहं को मुक्त कर, सत्स्वरूप को पहिचानो। एकाग्रचित्त होकर तुम अपनी सभी उलझनों को दूर कर सकोगे, समस्त कठिनाइयों को पार कर सकोगे। शान्ति–शक्ति के द्वारा सब कुछ सरल हो जायेगा।

प्रारम्भावस्था में चित्त एकाग्रता के लिये भ्रूमध्य में सुरति द्वारा ध्यान करना सरल और सुन्दर साधन है। इसके साथ–साथ परमात्व तत्व का किसी भी विशेष नाम द्वारा स्मरण करते रहना भी मनोनिरोध के लिये आवश्यक है। किसी भी धारणा द्वारा अभ्यास करते करते ध्यान दृढ़ होने पर मनोवृत्ति ध्येय में जब स्थिर हो जाती है तो यही

समाधि है। समाधि भी शास्त्रों में सविकल्प, निर्विकल्प वृत्ति हो जाय यही सहज समाधि है इसके अतिरिक्त चेतना जब अन्तर दिव्य स्तरों में जाग्रत होती है तब किसी को साकार रूप में स्थूल दर्शन होता है, किसी को ज्योति–प्रकाश रूप में सूक्ष्म दर्शन कहा जाता है। तदानुसार विविध प्रकार की मनोहर दिव्य–ध्वनियां सुनाई देती हैं। यही साधन की सिद्धावस्था है।

इस प्रकार के योगाभ्यासी जन–संसर्ग से दूर रह कर निर्जन स्थान में नियमित आहार–विहार द्वारा इन्द्रिय मन को संयम से वश में रखते हुये निन्दा स्तुति, हानि, लाभ, दुःख, सुख, संयोग, वियोग आदि विविध द्वन्दों में समस्थित रह कर निश्चय ही ज्ञान प्रकाश में परम सत्य का बोध प्राप्त करते हैं। देखो, सुनो, इनकी पवित्र वाणी द्वारा सत्य के गुप्त रहस्य खुल सके हैं। सावधान होकर समझो! जो कुछ तुमने देखा है और जो नहीं देखा, जो कुछ सुना है और जो नहीं सुना ऐसे विश्व में अथवा लोकान्तरों में एक ही अनन्त परमाधार सत्ता है जो सर्वत्र बाहर–भीतर नीचे–ऊपर सब में ओतप्रोत है। यही परम सत्ता विश्व–सृष्टि की उपाधि में व्यापक परमात्मा रूप में बाधित होती है और यही शरीर उपाधि के भेद से एक रूप से आत्मा रूप में अभिव्यक्त होती है, यह आत्मा भी वास्तविक रूप से अपने स्थान में सदा निर्विकार एक रस समस्थित है, इसी शुद्ध चिन्मात्र आत्म सत्ता की चेतना का जब बुद्धि के साथ संयोग होता है तभी अहं का स्फुरण होता है पुनः यही अहं जब किसी उपाधि के साथ मिलता है उसी से

तद्रूप होकर अहंकार कहाता है यह अहमिति भाव मनस क्षेत्र में उतर कर मनोमय चेतना का एक रूप धारण कर लेता है और इसी प्रकार मनोमय पुरुष रूप में वही अहं प्राण–क्षेत्र से तन्मय होकर प्राणमय पुरुष की उपाधि धारण करता है।

यही पुनः स्थूल देह में आत्मसात् होकर देहमय जीव बन जाता है। वास्तव में अहं का कोई रूप नहीं पर जिस प्रकार की गुण धर्म वाली उपाधि का संयोग होता है; बस उसी से यह तद्रूप हो जाता है, देह के साथ देहमय, प्राण के साथ प्राणमय, मन के साथ मनोमय, बुद्धि के साथ ज्ञानमय होकर यही अहं कर्मों का कर्ता भोक्ता बनता है। पुनः सत् स्वरूप के ज्ञान–बोध द्वारा जब समस्त उपाधियों का अभिमान छोड़ता है तब यही अहं परम शुद्ध सत्स्वरूप आत्मा से तन्मय हो जाता है। पुनः आत्मा शरीर संघात् की उपाधि से मुक्त होते ही विश्वमय परमात्मा में तन्मय हो जाता है। अब सोच कर देखो कि इस अहं का क्या रूप है? क्या लीला है? क्या माया है? यह सब इस ज्ञान प्रकाश में तुम्हें स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा। इस अहं का ही बन्धन है और इसी अहं की मुक्ति होती है। यही अहं उपाधि–बन्धन में बँध कर जीवात्मा कहा जाता है।

यही अहं–जीवात्मा भिन्न स्तरों एवं देहों की उपाधि से बंध कर तद्वत् गुण धर्मी बनता रहता है। उसी सीमा तक अपने को कर्ता मानता रहता है। उपाधि की स्थूलता से यह भी स्थूल सा हो जाता है और स्थूल उपाधि के ऊपर उठते ही यह सूक्ष्म रूप होता जाता है।

अन्त में समस्त प्रकृतिगत उपाधियों को त्याग देने पर शुद्ध स्वरूप निर्विकार आत्मा में आत्मसात् हो जाता है यहीं इसकी मुक्ति है। यहीं पर परम लक्ष्य परमानन्द की प्राप्ति है और दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति है।

अब तुम अहं के रूप को समझो। यह एक प्रकार से पूर्ण विशुद्ध आत्मा का अंश है। मनुष्य संघात में प्रकाशित है यह परम चित्त सत्ता (अनन्त परमात्मा का अंश) आत्मा है और इस मनुष्य के भिन्न भिन्न स्तरों में प्रकाशित आत्मा की चैतन्यता (देहाभिमानी चेतना) आत्मा का अंश है जिसकी पूर्णता आत्मा ही में पहुँच कर होती है, और आत्मा की अनन्त पूर्णता परमात्मा में तन्मय होकर होती है, यही मुक्ति का रहस्य है।

ध्यान–विधि से अन्तः हृदय द्वार खुलेगा। यह हृदय द्वार खुल जाने पर तो मानो मुक्ति का द्वार मिल गया। यहीं पर इस जीवात्मा को इस स्थूलाभिमानी अहं को अपने परमाधार परमानन्द स्वरूप का बोध होता है। जिस समय हृदय द्वार खुलता है उस समय यह अहं अपने पूर्ण जीवनाधार आत्मा के सन्मुख होता है। यहीं पर प्रेम भक्ति विशुद्ध रूप से चरितार्थ होती है। इसी विशुद्ध निष्काम प्रेम–भक्ति के द्वारा तुम अपने परमाधार आत्मा की अमृतमयी किरणों को शक्ति के रूप में अपने ऊपर उतरते हुए देखोगे। उस परम अमृत से तुम सर्वांग पवित्र एवं अवलोकित होकर तेजोमय सौन्दर्य से विभाूषित होगे। इस हृदय द्वार के खुलने पर विशुद्ध प्रेम ही भक्ति रूप में परिणत होता है।

फलस्वरूप इस प्रकार की दिव्यता से तुम अपने को पूर्ण पाने लगोगे तभी सावधान रहने के लिये सद्‌गुरुदेव की ही एक मात्र सहायता परमावश्यक होगी।

जब दैवी शक्ति, दैवी प्रकाश से यह अहं पवित्र या सम्पन्न होता है तभी निम्न प्रकृति की शक्तियाँ भी उस शक्ति बल प्रकाश में प्रायः अपना काम निकालने के लिये उमड़ पड़ती हैं और साधक को मान, माया तथा भोग के रसास्वाद में भ्रमित बना देती हैं इनके छल में वही साधक नहीं आता है जो लौकिक–परालौकिक भोग सुखों का त्यागी होता है। अनन्य भक्ति के द्वारा अहं को समर्पित करने पर ही तुम्हारे लिये निर्भीकता, अनासक्ति; समता; स्थिरता; शान्ति शक्ति सभी कुछ सरल हो जायेगी फिर तुम्हारे प्रत्येक स्तरों में वही दिव्यता उतरेगी जिससे मन प्राण सभी दिव्य बन जायेंगे।

तुम यहाँ पर शक्ति सम्पन्नता से अपने को भरा पाओगे। किन्तु उस शक्ति का उपयोग करते हुए यदि तुम उसके भोक्ता बनोगे तो यही तुम्हारे समर्पण में कलंक होगा। समर्पण की शुद्धता में तुम्हारी शक्ति सम्पन्नता का उपयोग केवल परम प्रभु की ही नीति, रीति के अनुसार होगा। परम प्रभु के योगी में जो कुछ भी दिव्य शक्ति होती है वह केवल परहित के लिये होती है न कि प्रदर्शन के लिये। तुम्हें अब यही पुरुषार्थ करना है कि यह अहं, जो जगत के विकारवान पदार्थों से तन्मय था (तभी तो इसे कहीं शान्ति न मिली) अब इसको व्यापक चिद्रूप आत्मा में तन्मय कर दो। यह तुम्हारी विशेषता है कि जिस रूप

का तुम ध्यान करोगे उसी रूप मय तुम हो जाओगे। शुद्ध मन तो जिस समय जैसा संकल्प करता है तुरन्त ही वैसा हो जाता है तब तुम मन के द्वारा निरन्तर सत् वस्तु का ही चिन्तन करो, परमात्मा के ही ध्यान में तल्लीन रहो।

स्मरण रहे कि यूं तो उस अनन्त का अन्त मिल ही नहीं सकता, यदि अन्त मिल जाय तो, वह अनन्त कहाँ रहा अतः यथार्थ बात यह है कि उस अनन्तता को समझ लेना ही सत्यानुभव है। बुद्धि का इसी सत्य में स्थिर हो जाना ही योगी होना है। तुम्हारे मन में जब कभी यह संकल्प स्फुरित होता है कि मैं यह हूँ तब यही तो बन्धन का मुख्य हेतु है, दृष्टा का दृश्य के साथ जो सम्बन्ध है यही तो बन्धन है। 'मैं यह नहीं हूँ', इस तरह का संकल्प मोक्ष के पथ में प्रेरित करता है। तुम अपनी कल्पना द्वारा ही बद्ध हो। उस कल्पना त्याग से ही तुम्हारी मुक्ति निश्चित है। आत्म ज्ञान ही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है। अभ्यास और वैराग्य द्वारा तुम ज्ञान–प्रकाश में आत्मस्वरूप का अनुभव करो उसी की पूजा करो, आराधना करो। शास्त्र और सद्गुरु कृपा का भी सुसंयोग होना चाहिए तब यह आत्मानुभव प्राप्त होता है फिर निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है। यह अभ्यास तीन प्रकार का होता है। एक तत्व में निरंतर दृष्टि रहे, प्राणों का निरोध हो और मन स्ववश हो, इसी से साधन में सफलता निश्चित है।

तुम्हें दिव्य ज्ञान की खोज में आत्मा के अतिरिक्त कहीं भी न भटकना चाहियें सब कुछ तुम्हें यहीं मिलेगा पूर्णता का केन्द्र यही

आत्मा है। परमात्मा की सभी महिमा सभी शक्तियाँ इस आत्मा में ही व्याप्त हैं पर आत्मानुभव का सीधा उपाय मन की शान्ति है।

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

आत्म–शुद्धि का साधन 'सेवा'

शक्ति तथा शान्ति की अभिलाषा रखने वाले बुद्धिमान सज्जनों तुम लोगों को विचार दृष्टि से यह तो दीखता ही होगा कि अपने सुख के लिये दूसरों की शक्ति सम्पत्ति चाहने वाले मनुष्य संसार में भरे पड़े हैं किन्तु अपनी शक्ति सम्पत्ति से दूसरों की सेवा सहायता करने वाले पुरुष कहीं कहीं हजारों के बीच में दो एक ही गिनती में मिलते हैं।

यदि तुम्हारे हृदय में दुःखियों, अभाव पीड़ितों की सेवा सहायता करने का सद्भाव प्रबल हो रहा है तो याद रक्खो तुम पर दैवी शक्ति की कृपा है क्योंकि उस कृपा के बिना तुम्हारे हृदय में इस प्रकार का पवित्र उत्साह एवं सेवा का साहस जाग्रत नहीं हो सकता था।

अब तुम महापुरुषों के उन आदेशों को अपनी बुद्धि में धारण करो जिनसे कि अपने सेवा व्रत को पवित्र तथा निष्कलंक रख सको। देखो! संसार में यह सेवा रूपी महान कार्य वही पुरुष कर सके हैं जो दोषों के त्यागी थे, सांसारिक भोग–सुखों से विरक्त थे और सत्य तत्वदर्शी थे।

तुम इस बात को सर्वप्रथम समझ लो, कि दूसरों की सेवा में सफल होने के लिये अपने मन पर अधिकार प्राप्त करना होगां क्योंकि यदि तुम मन संयम इन्द्रिय–दमन के लिये सावधान न रहोगे तो सच्ची सेवा कर ही नहीं सकते।

इस सत्य को भी स्मरण रखिये कि जहाँ तक भोग–सुखों की कामना पूर्ति में, धन और मान की प्राप्ति के लिये क्रोध में, ईर्ष्या, द्वेष तथा परनिन्दा में, व्यर्थ विवाद एवं परचर्चा में शक्ति को नष्ट करोगे वहाँ तक तुम दूसरे की सेवा सहायता करने में अपने को दुर्बल पाओगे। यदि तुम अहंकार से सावधान न रह सके तो कभी कभी अपने साथ काम करने वाले मित्रों के ही प्रति क्रोध आ जायेगा; तुम अपने साथियों की ही निन्दा करने लगोगे उनसे ईर्ष्या, द्वेष रखने लगे जाओगे और ऐसा तभी हो सकेगा जब तुम्हारे अभिमान तथा लोभ में आघात लगेगा। इसलिये तुम पहले से ही विनम्रता एवं उदारता को दृढ़ता से पकड़ लो क्योंकि इन दोनों सद्‌गुणों द्वारा ही तुम अभिमान और लोभ से पराजित न हो सकोगे। इसके साथ ही अधिकाधिक कष्ट–सहिष्णु बनते चलो तभी तुम वीरता पूर्वक दूसरों की सेवा में प्रगति प्राप्त करोगे।

सहिष्णु का अर्थ है शारीरिक और मानसिक कष्टों को धैर्यपूर्वक सहना, कहीं विचलित न होना। जिसमें धीरज का अभाव है उसे कष्ट–सहिष्णु, उदार और परिश्रमी बनना होगा, क्योंकि इस दैवी सम्पत्ति के बिना सेवा पूर्ण शुद्ध नहीं हो सकती।

तुम जितनी ही शीघ्रता से मोह, लोभ, मान आदि दोषों का त्याग करोगे जितनी ही तत्परता से अभाव पीड़ितों के लिये यथाशक्ति आवश्यक वस्तुओं का दान करोगे, इसके साथ ही जितना ही आप निष्काम होते जाओगे उतनी ही मात्रा में शक्ति तथा परमशान्ति से अपने को सम्पन्न पाओगे।

यह अच्छी तरह समझ लो, सेवा धर्म आत्म–शुद्धि का सर्वोत्तम साधन है, आत्महित का सर्वोपरि मार्ग है।

जब तुम्हारी समझ में यह आ जायेगा कि अपने हित के लिये, तथा स्वार्थवश होने वाले पापों अपराधों के प्रायश्चित पूर्ण करने के लिये, अथवा जो हमने दूसरों से कभी सेवायें ली हैं उससे उऋण होने के लिये दूसरों की सेवा सहायता करना ही चाहिये तब तुम्हें किसी की सेवा–सहायता करते हुए मिथ्या अभिमान न होगा।

सावधान रहो! जिस दिन तुम्हारे द्वारा किसी की सेवा बन जाय वह दिन बहुत ही शुद्ध दिन समझो लेकिन दूसरों से अपनी प्रसिद्धि न चाहो, मान न चाहो, बदला न चाहो।

सेवा भाव के साथ जब तक तुममें पवित्र प्रेम न होगा तब तक तुम निष्काम दानी, कष्ट–सहिष्णु नहीं हो सकोगे। पवित्र प्रेम में ही त्याग तथा दान एवं सहिष्णुता का बल होता है।

इस सत्य को भी स्मरण रक्खो सेवाव्रत को भंग करने वाले अभिमान, लोभ, क्रोध, सुखासक्ति, आलस्य और अदूरदर्शिता यही दोष है। तुम इन दोषों से सतर्क रहो।

सेवा के मार्ग में चलते हुए जब उत्साह ढीला पड़ने लगे तब साहस से काम लो, जब कष्टों की अधिकता से साहस टूटने लगे तब धैर्य को धारण करो और निरन्तर प्रयत्न करते चलो इसके साथ ही विरक्त ज्ञानी महापुरुषों से किसी न किसी प्रकार सद्प्रेरणा प्राप्त करते रहो।

तुम्हारे साथियों में यदि कोई ऐसा प्रस्ताव रक्खे—जो तुम्हारी समझ से ठीक न हो, साथ ही बहुमत भी तुम्हारे साथ न हो, तो तुम हठाग्रह न करो, अपनी सम्मति देकर मौन हो जाओ सबके साथ प्रसन्नता पूर्वक कार्य करो; कार्य का परिणाम ही कर्ता की योग्यता के बुद्धिज्ञान का परिचय दे देगा।

सेवा करते हुए जब किसी के अहंकार अभिमान की भाषा का, कठोर, कटु शब्दों का तुम्हें सामना करना पड़े तो तुम विनम्र रहकर अपनी प्रसन्नता की रक्षा करो। जहाँ कहीं कुछ हानि दीखती हो वहाँ उदारता के द्वारा अपनी शान्ति का द्वार खुला रक्खो।

जहाँ कहीं तप एवं त्याग की कमी होगी वहीं तुम में दोष अथवा पाप प्रबल होंगे।

तुम दूसरों को अपनी रुचि पूर्ति का साधन न बनाकर न्याय तथा प्रेम के द्वारा दूसरों की पूर्ति का साधन बन जाओ किन्तु किसी प्रकार से बदला न चाहो।

तुम्हारी प्रसन्नता का साधन केवल सेवा–सहायता होनी चाहिये। किसी से सन्मान या वस्तु लाभ की इच्छा न करनी चाहिये क्योंकि इस प्रकार की इच्छा ही वस्तु तथा व्यक्ति की दासता में परतन्त्र बना देती है।

इस सत्य को भी समझे रहो! जिसके पास जिस प्रकार की विशेषता होती है उसी के द्वारा वह दूसरों की अच्छी सेवा कर सकता है। तुम में चाहे बुद्धि की विशेषता हो चाहे धन की अथवा जन समुदाय की या फिर शारीरिक बल की ही विशेषता हो, तुम किसी विशेष बल के द्वारा ही प्राणियों की सेवा कर सकते हो। यदि तुममें किसी प्रकार की शक्ति न दिखाई दे तो इतना ही ध्यान रक्खो कि अपने सुख के लिये किसी को दुःख न दो। यदि तुमसे और कुछ न हो सकता हो तो कम से कम अपनी मधुर वाणी द्वारा, शुद्ध सरलता पूर्वक विनम्र शब्दों द्वारा, अपनी मुखाकृति की अखण्ड प्रसन्नता द्वारा, केवल प्रेम के विचारों द्वारा ही बहुत कुछ सेवा करते रह सकते हो।

जिस प्रकार अविवेकी अपने ही सुख का निरन्तर चिन्तन करता है उसी प्रकार तुम जहाँ कहीं चलो, बैठो, वहाँ सेवा के अवसर खोजते रहो।

अपने अधिकार की वस्तु से जब किसी को सहायता दो तब देने का गर्व न आने दो बल्कि उस समय यह सोचो कि मेरे पास ऐसी वस्तु ही कौन है जिसे मैंने बनाई हो, हर एक वस्तु मुझे मिली है और वह परमात्मा की वस्तु है। किसी सच्चे सेवक का यह शब्द स्मरण करो :–

मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर।।

जब तुम दूसरों को अपनी शिक्षा के अनुसार चलाना चाहते हो तब एक बार अपनी ओर भी देख लो कि स्वयं गुरुजनों की शिक्षानुसार चल रहे हो या नहीं।

दूसरों की सेवा सहायता करते हुये जब तुमको सैकड़ों व्यक्ति ऐसे दिखाई दें जो शक्ति, सम्पत्ति, सम्पन्न होते हुए भी किसी की सेवा सहायता नहीं कर रहे हैं तो तुम उनसे ग्लानि घृणा न करो उनकी निन्दा न करो बल्कि यह सोचकर मौन हो रहो कि कभी इन पर भी दैवी कृपा होगी तब यह भी सेवा सहायता में शक्ति का समय का सदुपयोग करेंगे।

जब तुममें सद्‌गुणों का साम्राज्य स्थापित हो जायगा तब दोषों के लिये कहीं स्थान न रह जायगा। तुम सच्चे भले आदमी तभी सिद्ध हो सकते हो जब किसी बुरे व्यक्ति की बुराई से विचलित न हो सको बल्कि निर्भय, निश्चिन्त और शान्त रहो।

जब तुमसे कोई सेवा का अच्छा कार्य बन पड़े और उस अच्छे कार्य का श्रेय आपके साथियों को भी मिले तब अहंकार से सावधान रहो– यह स्पष्ट करने की चेष्टा न करो कि अमुक विशेष कार्य केवल मैंने ही किया है। बल्कि अपनी विशेष योग्यता में दूसरों को भागी बनाकर उन्हें भी रस लेने दो स्वयं तुम गहरी उदारता का पक्ष लो।

सम्भव है तुम्हारे हाथों में सेवा के बड़े–बड़े कार्य आयेंगे और तुम उन्हें पूरा करोगे परन्तु ध्यान रहे, सुविधि से हीन बड़े–बड़े कार्य करने की अपेक्षा सुविधि पूर्वक छोटे–छोटे कार्य करना तुम्हारे लिये बहुत हितकारी होगां प्रत्येक कार्य को कुशलतापूर्वक करने के लिये आप सुविधि का सदा ध्यान रक्खो; इसके लिये बुद्धि को गम्भीर बनाओ। बुद्धि की गम्भीरता प्रायः मौन अथवा मितभाषण से पुष्ट होती है। गम्भीरता के अभाव में आप सेवा कार्य करने के पहले ही बहुत कुछ कह डालते हो लेकिन जब सेवा का कार्य पूर्ण कर लेने के पश्चात् बोलते हो तो यह तुम्हारी गम्भीर बुद्धि का परिचय है। और जब तुम बड़े–बड़े सेवा के कार्य पूर्ण करते हुए भी मौन रह सकते हो तो यह गम्भीर होने के साथ उच्चतर विवेक का लक्षण है।

तुम्हारी बुद्धि जितना ही अधिक गम्भीर होगी और विवेक सम्पन्न होगी–तुम्हारे लिये शक्ति तथा शान्ति का योग उतना ही अधिक सुगम होगा।

तुम्हारी बौद्धिक योग्यता तभी सराहनीय होगी जब दूसरों के दोष पूर्ण व्यवहार से तुम में सद्‌गुणों की वृद्धि होती रहे।

क्रोध का उत्तर क्रोध से प्रायः सभी लोग देते ही रहते हैं। अपनी निन्दा करने वाले की निन्दा सहज ही हो जाती है, बुराई की प्रतिक्रिया बुराई प्रायः सभी व्यक्तियों में दिखाई देती है परन्तु सेवाधर्म को स्वीकार कर लेने पर आप सदृश पुरुषों को तो तुम क्रोध क्षमा एवं दया के द्वारा ही दो।

अपनी बुराई करने वाले का भी भला सोचो, इस नीति से अविवेकी के अनेकों दोषपूर्ण व्यवहार तुम्हारे लिये सद्‌गुणों के शोषक न बनकर पोषक बनेंगे।

दूसरों की सेवा करते हुए तुम उस शक्ति–सम्पत्ति के अभाव की चिन्ता न करो जो तुम्हारे पास नहीं है बल्कि आज जो कुछ तुम्हारे अधिकार में है केवल उतने को ही सेवा में सार्थक करते चलो।

यदि कभी न्यायासन पर बैठकर तुम अपराधी को दण्ड देते हो तो वह दण्ड भी अपराधी अन्यायी की सेवा ही है क्योंकि दण्ड के दुःख से ही अपराधी अपने दोषों का त्याग करेगा; अतः उसके हित के भाव से दण्ड दो।

सेवा का व्रत लेकर तुम दूसरे की दुर्बलता पर अयोग्यता पर असभ्यता पर खीझ न उठो। जिस ढंग से कोई अपने स्वभावानुसार बात कहता है उसे अच्छी तरह सुन लो।

समाज की दृष्टि से बड़े कामों को ही तुम उच्च सेवा मानकर छोटे–छोटे कामों की अवहेलना न करो। अवकाश हो तो उसी प्रकार छोटे से छोटा कार्य भी प्रेम पूर्वक करो जिस प्रकार कोई बड़ा कार्य पूरा करते हो।

किसी प्रकार तुम ऐसी योग्यता प्राप्त कर लो कि जिससे कि अधिक से अधिक संख्या में विशेष कर वृद्धजनों विद्वानों साधु–आत्माओं का आशीर्वाद प्राप्त कर सको–ऐसा तभी हो सकेगा जब तुम शरीर द्वारा वाणी तथा मन द्वारा कोई पाप न होने दोगे।

ध्यान रहे! सन्त महापुरुषों के मतानुसार हिंसा, चोरी, व्यभिचार शरीर के पाप हैं। असत्य भाषण, निन्दा, कठोर वचन तथा व्यर्थ विवाद वाणी कें पाप हैं और देहाभिमान लोभ, द्वेष, क्रोध मन के पाप हैं। इन पापों के रहते हुये कोई सेवा पवित्र पुण्यमय नहीं हो सकती।

जब कभी तुम्हें कोई सेवा–पात्र मिले तब उसके मन की दशा का तथा दुःख के कारण का ज्ञान प्राप्त करो, उसकी परिस्थिति का अध्ययन किये बिना ही उसके विषय में केवल अपनी कल्पना से ही निर्णय न बना लो।

किसी की सेवा, सहायता करते हुए आप यह न समझ बैठना कि ''मुझे दुःखियों का दुःख दूर करना है'', वास्तव में तुम किसी की सेवा में अपनी शक्ति का सदुपयोग कर सकते हो किन्तु किसी को दुःखों से मुक्त करना तुम्हारे वश की बात नहीं है।

ध्यान रहे! भगवान से बढ़कर जीवों के दुःख हरने वाले तुम नहीं हो, न कल्याणकारी हो।

तुम्हारे लिये तो यही परम शुभ है, बड़े हित की बात है कि किसी की सेवा सहायता का सुअवसर प्राप्त हो जाय जिससे कि अधिकार गत समय तथा शक्ति सार्थक हो जाय। इस प्रकार का भाव रखकर कहीं भी सेवा का अभिमान न आने दो सदा विनम्र और सेवा कार्यों की अभिव्यक्ति में मौन ही रहो।

कभी कभी तुम्हें दूसरों की सेवा तथा सहायता करते हुए अपने आसपास ऐसे मनुष्यों का समुदाय दिखाई देगा जिसके पास सेवा के योग्य बहुत कुछ शक्ति–सम्पत्ति होते हुए भी दूसरों को देने के लिये कुछ भी न निकलेगा।

क्योंकि यह वह व्यक्ति हैं जो सम्पत्ति के होते हुए भी अभी निर्धन हैं। ऐसे मनुष्यों को अभी तक लेने से ही अवकाश नहीं मिल रहा है तभी दूसरों को देने का उन्हें अवसर नहीं मिलता।

यह भी समझ लो कि सेवा स्थूल तथा सूक्ष्म रूप से अनेकों प्रकार की होती है। तुम्हें कुछ व्यक्ति ऐसे भी मिलेंगे जो देखने में एकान्त, मौन, निष्क्रिम से होकर बैठे हैं परन्तु उनके द्वारा अदृश्य पथ से इतनी महान सेवा मानव समाज की होती रहती है जितनी सेवा स्थूल शरीर से कोई कर नहीं सकता। संसार की सर्वोपरि सेवा तो प्रकृति की मूक शक्तियाँ करती रहती हैं। सोच कर देखो! सूर्य, चन्द्र,

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि शक्तियों से कितनी महान सेवा हो रही है।

तुम ईश्वरीय शक्तियों की महान, किन्तु मौन सेवा का जितना ही अनुभव करोगे उतना ही तुम्हारा अभिमान दूर होगा।

उस दशा में तुम्हें अलौकिक शान्ति अनुभूत होगी जब तुम स्वयं को परमेश्वर की ही एक शक्ति किरण के रूप में समझने लगो और तुम्हें परमात्मा के अतिरिक्त अपने व्यक्तिगत क्षुद्र अस्तित्व का भान ही न रहे। अहं में अभिमान ही न रहे। तुम केवल महान प्रभु के एक उपकरण बन जाओ।

शान्ति तथा शक्ति का अनुभव त्याग एवं तप की पूर्णता में ही होता है। त्याग एवं तप के लिये दूसरों की निष्काम सेवा, सहायता सुन्दरतम साधना है।

सेवा के पथ में होने वाले त्याग तथा तप से ही अन्तःकरण शुद्ध होता है; शुद्ध अन्तःकरण से ही परमात्मा का सतत् चिन्तन ध्यान होना सुगम है। ध्यान दृढ़ता होने पर ही नित्य योगानुभव होता है।

तुम इस सत्य को स्मरण रक्खो, कि जो अपने शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि पर स्वामित्व प्राप्त कर लेता है वही दूसरों की सेवा कर सकता है।

बिना बदला चाहे संसार की सेवा करने वाले या तो समर्थ भगवान हैं या फिर भगवान के कोई प्रेमी भक्त हैं। परमात्मा के नामों तथा दिव्य गुणों को स्मरण करते हुए सेवा धर्म का पालन करते हुए तुम भगवान के सच्चे भक्त बन सकोगे और भक्त होकर ही तुम दूसरों की सच्ची सेवा कर सकोगे।

यदि संसार के दुःख बन्धनों से मुक्त होना चाहते हो तो अपनी समय शक्ति का सेवा में सदुपयोग करो, संसार से कुछ न चाहो, परमात्मा के योगी होकर परम शान्ति प्राप्त करो यही साधनों के द्वारा सर्वोपरि परम सिद्धि है।

तुम्हारी समझ में यह तो आ ही गया होगा कि जो व्यक्ति शक्तिशाली है, स्वतन्त्र है वही दूसरों की सेवा, सहायता कर सकता है। दूसरों के बन्धन खोलने के लिये तुम्हें अपने आपको समस्त बन्धनों से मुक्त कर लेना होगा।

शक्ति तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये अपनी इच्छाओं, कामनाओं, आवश्यकताओं को कम करना होगा। क्योंकि इच्छाओं, कामनाओं की अधिकता के कारण, मान तथा सुखासक्ति के कारण मानव वस्तु एवं व्यक्ति की दासता में बद्ध है। लोभ अथवा मोह से बद्ध मनुष्य की बुद्धि दूरदर्शी, सत्यदर्शी नहीं होती।

लोभ, मोह तथा अभिमान का त्याग करने पर मन पवित्र होता है और मन के स्वच्छ होने पर मनुष्य बुद्धिशाली बनता है। तुम अपने

भाग्य के भोग को भले ही न पलट सको परन्तु शुद्ध बुद्धि के विवेक से सुखद दुःखद परिस्थितियों में अपने को शान्त, सम रख सकते हो। शोकित होना चिन्तित, भयातुर, अप्रसन्न होना बुद्धिहीनता का परिचय है। विद्वान वही है जिसकी बुद्धि शुद्ध हो और शुद्ध बुद्धिमान वही है जो तुच्छ इच्छाओं एवं भोगजनित सुखों के वशीभूत न हो जो नित्य प्रसन्न हो शान्त हो। सबसे श्रेष्ठ विद्या वही है जिसके द्वारा तुम पापों अपराधों से अपने को बचा सको, तृष्णा को, मोह तथा लोभ को दूर कर सको, मन को स्ववश रख सको।

सेवा के मार्ग में तुम किसी व्यक्ति को अनिष्टकारी, द्रोही, शत्रु मानकर उसे नष्ट करने का दुःसाहस न करो वरन् उस शत्रुता को ही नष्ट कर दो जो प्रायः लोभ, अभिमान या किसी प्रकार की सुख–हानि के कारण हुआ करती है।

जिसमें सेवा की पूर्ण योग्यता आ जाती है उस पर भगवान की महान कृपा समझो। तुम पक्के त्यागी, तपस्वी होकर, दुःखों की आग से शुद्ध होकर, सुखोपभोग से विरक्त होकर ही दीन दुखियों की सेवा कर सकोगे और सेवा के द्वारा ही तुम पूर्ण तृप्ति आत्म शुद्धि तथा शान्ति लाभ करोगे– यह सब कुछ तभी होगा जब परमात्मा से ही केवल प्रेम होगा। सांसारिक सुखों का प्रेमी शुद्ध सेवक हो ही नहीं सकता।

ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(निष्काम जीवन)

चित में यदि चाह न रह जाये। फिर कुछ दुःख दाह न रह जाये।।
हम ऐसे हो जायें ज्ञानी, फिर रहे न किंचित अभिमानी ।
बन जायें सब कुछ के दानी। भव सिन्धु अथाह न रह जाये।।
सब भाँति सदा सन्तोष रहे। मन बुद्धि सदा निर्दोष रहे।
जग के वैभव धन पाने का। साशन अधिकार बढ़ाने का।
सोहं सत्योहं घोष रहे। कुछ भी परवाह न रह जाये।।
फिर किसी ओर भी जाने का। कुछ भी उत्साह न रह जाये।
अपने उर का छलमल धोकर। सब भेदभावना को खोकर।
हम 'पथिक' रहें तुम मय होकर दुर्गति की राह न रह जाये।।

भगवान तुम्हारे चरणों में

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान तुम्हारे चरणों में।
यह विनती है पल–पल छिनछिन, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
चाहे बैरी सब संसार बने, चाहे जीवन मुझपर भार बने।
चाहे मौत गले का हार बने, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
चाहे कष्टों ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अंधेरा हो।
पर चित्त न डगमग मेरा हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
चाहे काँटों में मुझे चलना हो, चाहे अग्नि में मुझको जलना हो।
चाहे छोड़ के देश निकलना हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
तुमहीं सब मय यह ज्ञान रहे, मुझमें न कहीं अभिमान रहे।
प्रभु मेरे तुम यह गान रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
यह विनती है पल–पल छिनछिन, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।

साहित्य मंगाने का पता

डा0 ताराचन्द्र क्लीनिक
28, विधान सभा मार्ग
निकट बर्लिंग्टन चौराहा, लखनऊ
मो0 9415062640
फोन – 0522–4048520

*****

स्वामी नानानन्द
संत पथिक साधना आश्रम
हरिपुर, रायवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
फोन – 0135–2485725

डा0 स्वामी अखिलेन्द्र
बंगाली टोला, बेलन बाजार
मुंगेर (बिहार)
फोन – 06344–222232

*****

अवधेश नारायण अग्रवाल
अग्रवाल गिफ्ट गैलरी
चौक, बहराइच (उ0प्र0)
फोन– 05252–237977
मो0– 9336881137, 9453017520

*****

भक्त ब्रदर्स
श्री रामकृष्ण पार्क, अमीनाबाद, लखनऊ – 226018
फोन– 0522–6570333, 6531333 मो. – 9415418811

*****

मध्य प्रदेश के जो पाठक **श्री स्वामी जी** का
साहित्य लेना चाहें कृपया नीचे लिखे पते पर सम्पर्क करें–
श्री विष्णु जी अग्रवाल
अग्रवाल बुक सेलर, एम.आई.जी.–21, दीन दयाल पुरम
पो0–खण्डुआ–पिन–450001 (म0प्र0)
दुकान मो0–9407455034 निवासः मो0–09407457977

Website : www.pathikji.net

जो श्रद्धालु साधक संत पथिक जी के इन प्रकाशनों को समय–समय पर प्रकाशित करवाने में अपना सहयोग देना चाहें और अपने प्रियजनों का नाम भी छपवाना चाहें तो वह श्रद्धालु सहयोग राशि 'हर्ष कुमार सूरी' के नाम से खाता संख्या **CBS A/c 0293000109120890** पंजाब नेशनल बैंक, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ में सीधे डाल सकते हैं। ईश्वरीय कार्य में आपका सहयोग अविस्मरणीय रहेगा। इस प्रक्रिया में बैंक कोई कमीशन नहीं लेगा।

साधु वेष में पथिक का संक्षिप्त परिचय

आपके शरीर का जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में सम्वत 1935 में हुआ था। आपके पिता जिला फतेपुर ग्राम–बकेवर के रहने वाले थे। कालान्तर में वह जाकर ग्राम–साढ़ जिला कानपुर में रहने लगे। आपकी बाल्यावस्था ननिहाल में व्यतीत हुई। वहीं पर कुछ शिक्षा प्राप्त की। आपको बचपन से देवी–देवताओं पर पूर्णतः विश्वास था। आपके माता–पिता का स्वर्गवास हो जाने पर आप ग्राम के बाहर भूँधरा खोदकर तप करने लगे। इस अवस्था में भी अनेक लोग आपके दर्शन करने आया करते थे।

बाल्याकाल से ही किसी से उपदेश सुने बिना भगवान के नाम जप स्मरण में विश्वास था। आरम्भ से ही एक परमहंस अवधूत सन्त में श्रद्धा हो गयी जो नग्न ही घूमते थे। कोई वस्त्र न रखते थे। स्नान के पश्चात खाक लगा के जल सुखाते थे। उसे विभूति कहते थे।

गुरु महाराज ने आपका नाम ''पलकनिधि'' रखा था। वैसे आस–पास के गाँव के लोग आपको ''ब्रह्मचारी'' कहा करते थे। सीतापुर में आपने बहुत समय तक तप किया। नदी किनारे पर्ण कुटी बनाकर आपने तप किया। उस समय आप टाट का ही अचला, लंगोटी, बिछाने ओढ़ने के लिये भी आप टाट का ही प्रयोग करते थे। चना, गेहूँ को फुलाकर खाते थे।

पूर्व जन्मों के संस्कारों से प्रेरित होकर सब कुछ छोड़कर साधु वेश में विचरण करते हुए अनेकों कविताएं लिखीं। एकान्त सेवी होने के कारण पद्य के साथ–साथ गद्य लिखना आरम्भ हुआ। लगभग पैंसठ पुस्तकें छपी। मान प्रतिष्ठा पूजा भेंट से सदा विरक्त रहकर विचरण करते हुए आध्यात्मिक विचारों का समाजव्यापी प्रचार बढ़ता गया, विचारों की प्रधानता से विचारक समुदाय की वृद्धि होती गयी। 'साधु वेष में एक पथिक' नाम से कल्याण में लेख छपते रहे। आपने अठसराय में नागा निरंकारी विद्यालय बनवाया और जिला कानपुर ग्राम–साढ़ में भी आपने विद्यालय बनवाया है।

ज्येष्ठ–शुक्ल पंचमी तदनुसार 10 जून 1997 को परमार्थ आश्रम हरिद्वार में आपका शरीर पूर्ण हुआ और वहीं पर भव्य सन्त पथिक समाधि मन्दिर बना है।